सिद्धयोग

2016

संस्थापक : योगयोगेश्वर
अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

एक प्रति : रू. 20
द्विवार्षिक : रू. 360

वर्ष : 49 ; अंक : 6
सितम्बर 2016

प्रकाशन तिथि- 01.09.2016

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र

अमृत-कण

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दंडेन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुख:।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् 4/3)

अर्थात् तुम्हीं स्त्री हो, पुरुष भी तुम्हीं हो, तुम कुमार, तुम कुमारी भी हो और तुम्हीं दण्ड का सहारा लिये हुए वृद्ध हो, विश्व में सर्वत्र तुम्हीं हो।

◆ ◆ ◆

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन:।।

(गीता 6/29)

अर्थात् सर्वव्यापी अनन्त चेतन में एकीभाव से स्थितिरूप योग से युक्त आत्मा वाला तथा सब में समभाव से देखने वाला योगी आत्मा को सम्पूर्ण भूतों में स्थित और सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में कल्पित देखता है।

◆ ◆ ◆

यद्यत् विभूतिमत् सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्।।

(गीता 10/41)

मनुष्यों में जहाँ अद्‌भुत आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है, समझो वहाँ मैं वर्तमान हूँ, मुझसे ही इस आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है।

◆ ◆ ◆

अहं वृक्षस्य रेरिवा। कीर्तिः पृष्टं गिरेवि। उर्ध्वपवित्रो वाजिनीव
स्वस्मृतमस्मि। द्रविणाँ सवर्चसम्। सुमेधा अमृतोक्षित:।

(तै.उपनिषद् 1/10)

मैं (संसार रूप) वृक्ष को हिलाने वाला हूँ। मेरी कीर्ति पर्वत के सदृश है। मैं वह हूँ जिसके ज्ञान का पवित्र (प्रकाश) ऊँचा उदय हुआ है, मानों सूर्य में है। मैं सुमेधा हूँ, अमृत हूँ, क्षीण न होने वाला।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 49
अंक 6

सितम्बर
2016

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

नद्यः सदृश महापुरुषः

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे
ऽस्तं गच्छन्ति नाम रूपे विहाय
तथा विद्वान नामरुपाद् विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।

अर्थात्

जिस प्रकार बहती हुई नदियाँ अपना–अपना नाम रूप छोड़कर समुद्र में विलीन हो जाती है, वैसे ही ज्ञानी महापुरुष नाम–रूप से रहित होकर परात्पर दिव्य पुरुष परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। सर्वतो भाव से उन्हीं में विलीन हो जाता है।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

□□□ □□□

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	7
3.	श्री मद्भागवत में योग–परिचर्चा– डॉ. विजय सिंह	9
4.	आध्यात्मिक प्रगति– प्रो. ऋषिराम शर्मा	13
5.	न्यू बोले गुरुजी– जगदीश राए बंसल	22
6.	आत्म–संयम	26
7.	गज़ल– नूपेन्द्र	29
8.	योग–आसन	30
9.	योग स्वस्थ जीवन की कला और विज्ञान है– दिनेश चन्द्र शर्मा	31
10.	प्राणायाम और उसकी उपयोगिता– श्री नारायण स्वामी	35
11.	ध्यानाभ्यासी का ध्यान बन्द होने का मुख्य कारण	38

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन	: रु.1000.00

विशेष लेख

योगी को प्रातिभ श्रावण आदि का ज्ञान

योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमने अपने पूर्व लेखों में योगी को आत्म साक्षात्कार कैसे होता है ? इस विषय को भली प्रकार से समझाने का प्रयत्न किया है। योगी ज्यों–ज्यों अपने हठतर अभ्यास के बल से विवेक ख्याति की ओर बढ़ता है त्यों–त्यों उसकी बुद्धि में ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय हो जाया करता है। जब तक साधक के मन में ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय नहीं होता तब तक अन्य जितनी भी बुद्धिये हैं वृक्ष की तरह से वृक्ष से बीज और बीज से वृक्ष की तरह से अन्य ज्ञानों को पैदा करती रहती हैं किन्तु सम्प्रज्ञात समाधि की चतुर्थ श्रेणी में जब योगी पहुँच जाता है तभी उसके मन में ऋतम्भरा प्रज्ञा का प्राकट्य आरम्भ हो जाता है। ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय हो जाने के बाद योगी अतीतानागत सभी प्रकार के ज्ञानों को अपनी बुद्धि में धारण करता है। ऋतम्भरा प्रज्ञा के उदय हो जाने पर योगी किस प्रकार से सभी प्रकार का दृष्टा हो जाता है, योग दर्शन में समाधि पाद के 47वें सूत्र के भाष्य में योगी किस प्रकार सभी कुछ देखता है इस बात को समझाने के लिए एक श्लोक कहा है जो इस प्रकार है –

प्रज्ञाप्रसादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः, सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।

अर्थात् योगी जिस समय बुद्धि के उच्चतम प्रासाद पर बैठ जाता है तब वह स्वयं अशोच्य हो जाता है अर्थात् मनुष्य मात्र की चिता से परे उसकी स्थिति हो जाती है। जिस प्रकार पर्वत शिखर पर बैठा हुआ मनुष्य भूमि पर रहने वाले मनुष्य को भली प्रकार देख लेता है। इसी प्रकार से ऋतम्भरा प्राप्त योगी सभी पदार्थों का ज्ञाता हो जाता है। यह ऋतम्भरा प्रज्ञा श्रुत और अनुमान के विषय से आगे की वस्तु है, क्योंकि यह यथार्थ ज्ञान को प्रकट करने वाली है और इसके उदय हो जाने पर अन्य सभी व्युत्थान संस्कार आशय रुक जाया करते हैं। उनको यह स्वभाव से ही रोक देती है इसलिए भगवान पतञ्जलि देव ने –

तज्जः संस्कारोऽन्य संस्कार प्रतिबन्धी।

अर्थात् इस बुद्धि के संस्कारों को रोकने वाले हो जाते हैं। अतः मनुष्य जिस समय में परार्थ भावों को छोड़कर स्वार्थ संयम करता है तो वह आत्म साक्षात्कार की ओर बढ़ जाया करता है और प्रातिभ श्रावण, वेदना दर्श आदियों का ज्ञान बिना किसी प्रयास योगी के मन में

अनायास ही प्रकाशित हो जाया करता है। देखिये पातञ्जल योग दर्शन में भगवान पतञ्जलिदेव स्वयं अपने मुखारबिन्दु से क्या उपदेश करते हैं–

ततः प्रातिभ श्रावण वेदनाऽऽदर्शास्वादवार्ता जायन्ते।।

जिस समय योगी परार्थ भावों को छोड़ करके स्वार्थ में संयम करता है उस समय उसके मन में सर्वप्रथम प्रातिभ ज्ञान का उदय होने लगता है। प्रातिभ ज्ञान को तारक ज्ञान बतलाया गया है और यह विवेक ज्ञान का पूर्ण रूप है। प्रातिभ ज्ञान की स्थिति को इस प्रकार समझ लेना चाहिये जैसे सूर्योदय से पूर्व ऊषा काल में धुंधले–धुंधले प्रकाश में मनुष्य सब कुछ देखने लगता है इसी प्रकार योगी निर्वाणोन्मुखी वृत्ति पैदा हो जाने के बाद ज्यों–ज्यों वह स्वार्थ संयम् के बल से आत्म साक्षात्कार की ओर को बढ़ता है त्यों–त्यों प्रातिभ ज्ञान स्पष्ट होने लगता है। ऊषा काल में जैसे पहले मन्द–मन्द प्रकाश उदित होकर वह स्वाभाविक ही उत्तरोत्तर सूर्योदय के प्रचण्ड प्रकाश की ओर बढ़ता चला जाता है और सूर्योदय हो जाने के बाद वह अरुणोदय वाला प्रकाश भी नहीं रहता और सूर्योदय का शुभ प्रकाश हर वस्तु के स्वरूप की यथार्थता से प्रकाशित कर देता है इसी प्रकार से प्रातिभ आदि ज्ञान आत्म साक्षात्कार के पूर्व काफी सत्यार्थ के प्रकाशक हो जाते हैं किन्तु आत्मसाक्षात्कार के हो जाने के बाद योगी जो देखता है सत्य देखता है। उसकी किसी भी चेष्टा में अन्यथात्म नहीं रहता। संसार में इस प्रकार के बहुत से जीव समय–समय पर प्रकट होते रहा करते हैं जिनके जन्म–जन्मान्तर के अभ्यास के फल स्वरूप स्वाभाविक ही प्रातिभ ज्ञान रहा करता है। वह किसी बात को स्पष्ट रूप से तो नहीं कह सकते कि क्या होना है और कैसा होना है किन्तु उनकी बुद्धि के अन्दर यह निश्चय रहा करता है कि अमुक बात इस प्रकार से होने वाली है ऐसी ही होगी क्योंकि मेरी बुद्धि में यह विचार दृढ़ हो रहे हैं। इस प्रकार के साधक भव प्रत्यय वाले साधक कहलाया करते हैं। योग दर्शन के समाधि पाद में यह बात भगवान पंतञ्जलिदेव ने अपने मुखारबिन्द से स्वयं स्पष्ट कर दी है –

भव प्रत्ययोविदेह प्रकृति लयानाम्।

अर्थात् – विदेहानां देवानां प्रकृतिलयानाञ्च योगिनाम भव प्रत्ययो भवति। जो योगी योग भ्रष्ट हो जाने पर स्वार्गादि लोक लोकान्तरों को चले जाया करते हैं और बाद में पुण्योपभोग के पश्चात् जब उनको पुनः मनुष्य लोक में जन्म लेना पड़ता है तो देव लोक में जो ज्ञान उनको दूर दर्शन दूर स्वर्ण आदि के स्वाभाविक प्राप्त थे वह यहाँ जन्म लेने के बाद भी उनके मनों में थोड़े–थोड़े प्रकट होते रहा करते हैं। इसी प्रकार से जो योगी अभी आत्म साक्षात्कार तक नहीं पहुँच पाये और उनके शरीर का अन्तकाल आ गया वे योगी प्रकृतिलीन योगी कहलायेंगे। यद्यपि यथार्थ रूप में वे स्वार्थ संयम करके पौरुषेय ज्ञान को प्राप्त नहीं हुए

किन्तु फिर भी उन्होंने थोड़ा–थोड़ा निर्वाणोन्मुक्खी वृत्ति का आश्रय लिया ही था, इतने में ही देहावसान का संयम आ गया। ऐसी स्थिति में प्रकृति लीन होना ही उनके लिये स्वाभाविक हो गया। ऐसी स्थिति में प्रकृति लीन होने पर क्योंकि उनका चित्त साधिकार है और अपने उस साधिकार चित्त के द्वारा ही वे लोग '**कैवल्य पदमिवानु भवन्त**' की स्थिति को प्राप्त हो गये हैं किन्तु चित्त के साधिकार रहने के कारण उनका जन्म होना भी अवश्यम्भावी है और जन्म लेने पर पूर्व ज्ञान का उदय भी अवश्यम्भावी है। इसलिए ऐसे लोगों को भी प्रातिभ ज्ञान का आभास रहा करता है। इस विषय को अखिलात्मा भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन का प्रश्नोत्तर देते हुए इस प्रकार से स्पष्ट कर दिया है–

पार्थ नैवेह नामुत्र, विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याण कृत्कश्चिद्, दुर्गतिं तात गचछति।

प्राप्य पुण्यं कृतां लोकानुषित्वा शाश्वती: समा:।
शुचीनां श्रीमतां गेहे, योग भ्रण्येऽभिजायते।।
अथवा योगिनामेव, कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लतरं लोके, जन्म यदीदृशम्।।

तत्र तं बुद्धि संयोग, लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूय: संसिद्धौ कुरुनन्दन।।

अर्जुन का प्रश्न था योग भ्रष्ट व्यक्ति की क्या गति होती है ? उसका उत्तर देते हुए भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुए कहा कि हे अर्जुन ऐसे व्यक्ति का इस लोक व परलोक में कहीं भी नाश नहीं होता। वह अपने योगाभ्यास के पुण्य के प्रभाव से दिव्य स्वर्ग लोक को भोग कर पुन: इसी मनुष्य लोक में जन्म ले लेते हैं। उनका जन्म यहाँ पर पवित्र धनवानों के घर में अथवा योगियों के ही कुल में हुआ करता है और इस प्रकार का जन्म भी इस मनुष्य लोक में अत्यन्त दुर्लभ है। यहाँ जन्म लेने के बाद उस को पौर्वदेहि बुद्धि संयोग फिर से प्राप्त हो जाया करता है जिसके फलस्वरूप वे लोग पुन: अपने अभ्यास में लग जाया करते हैं। अत: जन्म जन्मांतर के अभ्यासी कितनी ही आत्माओं को प्रातिभ आदि ज्ञान भी स्वाभाविक रहा करते हैं। जो योगी अभ्यास करते–करते आत्म साक्षात्कार के नजदीक पहुँच गए हैं उनको यह प्रातिभ नाम का तारक ज्ञान तो स्वाभाविक होता ही है किन्तु उसके साथ–साथ श्रावण वेदनादियों के ज्ञान भी स्वाभाविक हो जाया करते हैं। यह याद रखना चाहिये कि प्रातिभ ज्ञान

के अन्दर अतीत, अनागत की वस्तुएँ, सूक्ष्म से सूक्ष्म और छुपी हुई एवं दूर देश वाली वस्तुओं का भी ज्ञान हुआ करता है।

श्रावण ज्ञान

श्रावण–ज्ञान का अर्थ है दूर–दूर की बातें सुनाई देना, सूक्ष्म से सूक्ष्म शब्दों को सुनना वहाँ तक जहाँ तक आकाश का सम्बन्ध है, वहाँ तक की कुल ध्वनियाँ आत्म साक्षात्कार के नजदीक वाला योगी स्वाभाविकत: ही सुन लेता है और उन शब्दों का अर्थ–ज्ञान भी उसको हो जाया करता है।

वेदना

वेदना का अर्थ है दिव्य स्पर्शो का ज्ञान। स्वायत्त चित्त होकर बैठे योगी को यदि कोई आकर के नमस्कार करता है या किसी भी प्रकार का सूक्ष्म स्पर्श उस योगी को होता है तो उसका अनायास ज्ञान योगी को हो जाता है। इसी प्रकार से आदर्श ज्ञान का अर्थ है– सूक्ष्म से सूक्ष्म रूपों को देखना। यह भी योगी को स्थिति में बिना प्रयास के हो जाया करता है। इसी प्रकार से दिव्य आस्वादों का अनुभव करना, दिव्य गन्धों का ग्रहण करना आदि–आदि सब बातें आत्म साक्षात्कार के नजदीक पहुँचते हुए योगी को स्वाभाव से होने लगती हैं। आजकल के साधू समाज में हर व्यक्ति जो थोड़ा सा भी भजन ध्यान करता है वह अपने वेश के बल पर बड़े अभिमान पूर्वक कह बैठता है कि अब मेरा तीन लोक में कोई भी कर्तव्य नहीं रहा है **प्राप्त प्रापणीयं** जिस वस्तु की आवश्यकता थी वह मैंने प्राप्त कर ली है।

छिन्नः श्लिष्ट पर्वो भव संक्रमः।

पौरी दर पौरी जुड़ा हुआ संसार चक्र मैंने काट दिया है किन्तु यथार्थतः उपरोक्त स्थिति से वे लोग बहुत दूर होते हैं उपरोक्त सारी बातें आत्म साक्षात्कार के सन्निकट पहुँचने वाले योगी को हुआ करती हैं और जिनं लोगों को पूर्ण रूपेण आत्म साक्षात्कार हो जाया करता है उनकी सर्व ज्ञातृव्य शक्ति पराकाष्ठा की हुआ करती हैं। अत: साधक को चाहिये कि यथार्थनुभूति के बिना अपने आपको कृतार्थ होने के भ्रम में न डाले एवं अपने आपको अनभ्यासी व अकर्मण्य न बना दे। जो लोग सब प्रकार से इन्द्रियों का दमन करके सफल प्रयास करते हैं। वह अवश्य ही निःश्रेयस सिद्धि अर्थात् स्वरूप साक्षात्कार को प्राप्त हो जाया करते है।

●सम्पादकीय

ध्यान का वैज्ञानिक स्वरूप

आचार्य (डा.) दासलाल शर्मा

योग की मुख्य प्रक्रिया ध्यान है। मैंने पिछले लेख में बताया था कि साधक को कहाँ व कैसे ध्यान करना चाहिये। ध्यान अपने शरीर के अन्दर ही चेतना के केंद्रों में किया जाता है। मूलाधार स्वाधिष्ठान व अनाहत आज्ञा आदि चक्र में ध्यान आँखें बंद करके ही किया जाता है। क्योंकि खुली आँख रहने पर हमारी वृत्ति बाहर जाती है ध्यान बाहर चला जाता है वृत्ति मन की लहरें होती हैं। पीछे सगुण ध्यान और निर्गुण ध्यान की बात की गयी है जिसमें सगुण ध्यान ही श्रेयस्कर है और साधक के लिए सद्य फलदायक है, यह निर्णय किया गया था। निर्गुण का ध्यान कठिन है इसके लिए हम ऊँ का ध्यान कर सकते हैं। पतंजलि जी ने ऊँ या प्रणव का जाप बताया है और साथ ही 'तज्जपस्तदर्थ भावनम्' के अनुसार मन्त्र के अर्थ की भी भावना या चिंतन करने की बात कही गयी है। मनुष्य जब से पैदा हुआ है ; संसार का ज्ञान उसे दो तरह से होता है या तो वह किसी वस्तु को उसके नाम से जानते हैं या रूप से, जिसे वह व्यवहार में देखा करता है। नाम और रूप से भिन्न और किसी को मनुष्य जानता नही है और वह उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता है।

आत्म नाम और रूप से भिन्न है अतीत है क्योंकि वह अव्यक्त है इसलिए उसका चिन्तन बनता नहीं है सगुण उपासना से हम किसी एक रूप का ध्यान करते हैं। इष्ट के नाम का जाप करते हैं तथा उनके रूप का ध्यान करते हैं ध्यान करते हुए हमारे प्राण और मन उस में विलीन होने लगते हैं। छोटी शक्ति बड़ी शक्ति में विलीन होती है यह नियम है। साधक के मन और बुद्धि इष्ट के स्वरूप व चित्त में लीन होने लगते हैं। गीता में भगवान ने भक्ति योग के बारहवे अध्याय में अर्जुन को मन और बुद्धि को अपने में निवेश करने का आदेश दिया है इससे भक्त भगवान में ही वास करता है। जितने भक्तात्मा हुए हैं उन्होंने इसी प्रकार से इष्ट की शक्ति को पाया है। योग दर्शन में ईश्वर प्रणिधान से समाधि प्राप्ति का वर्णन है ईश्वर प्राणिधान के प्रकरण में व्यास देव जी लिखते हैं– ईश्वर प्राणिधान से; भक्ति विशेष से अपनी श्रद्धा व प्रेम से सम्मुख किया हुआ ईश्वर साधक पर कृपा करता है। वे अपने संकल्प से साधक के समाधि की अभिलाषा को पूर्ण कर देते हैं। ध्यान योग की प्रक्रिया पूर्ण लय कर देने पर ही साधक को अभीष्ट लाभ पहुँचता है। इसको हम एक उदाहरण से समझ सकते हैं हम यदि किसी वस्त्र को रंगते हैं तो उसमें सूखा रंग डालने से काम नहीं बनेगा। होलियों में हम एक दूसरे के ऊपर आपस में सूखा रंग डालते हैं जो सहज ही झाड़ने मात्र से छूट जाता है। यदि पक्के रंग को पानी में घोल कर नमक आदि मिलाकर किसी के ऊपर डालते हैं या फेंकते हैं, वह बहुत कठिनाई से उतरता है। इसी प्रकार से पूजा– पाठ, उपवास तीर्थ आदि का रंग हमारे ऊपर स्थाई रूप से चढ नहीं पाता। वस्त्र को रंग में पूरा डुबोने पर ही रंग चढ पाता है यही बात समाधि के विषय में है जब तक पूर्णतया मन बुद्धि को इष्ट में लय नहीं करते हैं तब तक लाभ नहीं मिल पाता है। मनुष्य हल्के फुल्के दान; तप तीर्थ ; दान करता है तो उसे भोग के रूप में स्वर्ग की प्राप्ति होती है जहाँ से फिर पुनरावृत्ति होती है ; जबकि ध्यान कारण शरीर तक प्रवेश कर जाता है और मुक्ति का कारण बन जाता है।

मीरा बाई ने अपने को पूर्णतया भगवान में लीन कर दिया था इसी से उनके जीवन में अलौकिक शक्तियों का वास था। इसी के बल पर मीरा ने विष को अमृत में ब~ल दिया था। यह मीरा

की संकल्प शक्ति का परिणाम था।

ऋषिकेश से आगे ब्रह्मपुरी के जंगल में एक योगी श्री कृपालानंद रहते थे। वे भगवान शिव में लीन रहा करते थे। इस कारण से उन में भी शिव की शक्तियाँ सहज ही वास करती थीं और वह अलौकिक शक्तियों से शिव कापा से सम्पन्न थे। अपने संकल्प से ही अपनी अंग्रेज शिष्या को बहुत भारी शिला के उपर बिठाकर योगी हीरागिरी की कुटिया के सामने आकाशमार्ग से लाकर रखवा दिया था। इस प्रकार से दृष्टांतों से स्पष्ट होता है कि ध्यानयोग से योगी में भी अपने इष्ट की सिद्धियाँ स्वतः आ जाती हैं। यह घटना सगुण ध्यान का उत्कृष्ट उदाहरण है। अस्तु ! निर्गुण के ध्यान में साधक ब्रह्म का ध्यान करता है। नाम तथा रूप से अतीत ब्रह्म के ध्यान में साधक का मन एकाग्र नहीं हो पाता है। प्रकाश का चिंतन लम्बे समय तक कठिनाई से ही हो पाता है। (य मनसा न मनुते) जिसका मन से मनन नहीं हो सकता है वही ब्रह्म कहा जाता है। सगुण उपासक ही स्वतः ही अभ्यास बढ़ाते बढ़ाते कालान्तर में निर्गुण में प्रवेश पा जाता है ; गुणातीत हो जाता है। वस्तुतः योग सगुण या साकार से निराकर की ओर साधना है। गीता के दसवें अध्याय में भगवान कहते हैं कि जो मुझ में अनन्य भाव से प्राण और चित्त लगाये रखता है ; मेरी लीला व चरित्रों का भक्तों में गुणानुवाद करता है ; निरन्तर मेरा चिन्तन करता है उसे मैं बुद्धि योग देता हूँ जिसके बल से भक्त मुझे पा जाते हैं। उन भक्तों पर पूर्ण कृपा करते हुए योग रूपी दीपक से उनके घट में व्याप्त अन्धकार को नष्ट कर देता हूँ।10/11 – गीता

इस प्रकार से अपने सगुण भक्ति और ध्यान का अनुपम फल भगवान ने बताया है। निर्गुण ब्रह्म में वह आकर्षण नहीं होता है जिससे भक्त उनकी तरफ बल पूर्वक खिंचा चला जाए। सगुण उपासना में दोनों ओर से परमाणुओं का आदान प्रदान होता है। धीरे–धीरे साधक के निर्बल परमाणु इष्ट के दिव्य परमाणुओं में लय होते चले जाते हैं इससे साधक मे दिव्यता आ जाती है और साधक के अंतःकरण में विद्यमान अज्ञान मिट जाता है। सगुण और निर्गुण के ध्यान की बात समझने के लिए एक उदाहरण का सहयोग ले सकते हैं। एक विद्यार्थी जब हिन्दी पढ़ना शुरू करता है तो उसे अ से अनार, का बोध कराते हैं बच्चा अनार के चित्र को देखकर अ का बोध प्राप्त करता है जबकि अ से अंगूर, अंजीर, अमरूद आदि असंख्य शब्द बनते हैं। ऐसे ही सगुण के ध्यान में परिपक्व होकर धीरे–धीरे कालान्तर में निर्गुण में प्रवेश पा जाते हैं।

योग ध्यान में भी सर्व प्रथम वितर्क अनुगत समाधि का अभ्यास किया जाता है। इसमें पंच तत्व के स्थूल रूप का ध्यान आँखों को बन्द करके किया जाता है। साधक को पृथ्वी, जल, अग्नि के दृश्य दिखाई देते हैं। कुछ महिनों के अभ्यास के बाद पंच महाभूतों के सूक्ष्म रूप शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध तन्मात्रा का अनुभव करता है। इस प्रकार से सम्प्रज्ञातधि में पूर्णता प्राप्त करता है इसे सबीज समाधि भी कहते हैं। ये सब सगुण समाधि हैं। आगे की समाधि निर्गुण या निर्बीज समाधि है जिसे प्राप्त करना योगी का परम लक्ष्य होता है। इस प्रकार से कहा जा सकता है कि सगुण ध्यान से ही निर्गुण में प्रवेश मिलता है। सीधे निर्बीज में जाने का क्रम नहीं है।

इस प्रकार से ध्यान योग जैसे कठिन विषय को शास्त्र प्रमाण के द्वारा तथा जैसे गुरुदेव के मुख से श्रवण किया है ; उसे पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास किया गया है। अतः साधक को अपने जीवन में प्रतिदिन ध्यान का नियमित अभ्यास करना चाहिए। यही कल्याण का मूल साधन है।

जय सद्गुरु भगवान की।

श्री मद्भागवत में योग-परिचिर्चा

डॉ. विजय सिंह

आठवें स्कन्ध के प्रथम अध्याय में मनवन्तरों का वर्णन किया गया है। श्री शुकदेव जी ने परीक्षित् के पूछने पर बीते हुये छः मनवन्तर (इस कल्प के) उसमें प्रकट हुये भगवान के नाम और संक्षेप में लीला वर्णन किया। इस कल्प के पहले मनवन्तर में यज्ञ-पुरुष और कपिल अवतार की कथा जो तीसरे स्कन्ध में किया जा चुका है। एक बार स्वायम्भुव मनु एकाग्र-चित्त से मंत्र जाप कर रहे थे। उन्हें इस अवस्था में असुर खाजाने हेतु झपटे। अन्तर्यामी भगवान यज्ञ पुरुष प्रकट हो असुरों का संहार कर डाला। दूसरे मनु स्वारोचिष हुये हैं। इस काल में वेदशिरा नाम के ऋषि की पत्नी तुषिता के गर्भ से भगवान ने अवतार ग्रहण किया और विभु नाम से प्रसिद्ध हुये। वे आजीवन ब्रह्मचारी रहे। उनसे शिक्षा प्राप्त अठासी हजार व्रत-निष्ठ ऋषियों ने ब्रह्मचर्य व्रत पालन किया-

अष्टाशीतिसहस्त्राणि मुनयो ये धृतव्रता:
अन्वशिक्षन्व्रतं तस्य कौमार ब्रह्मचारिण:।। 22।। अ.1 स्कं.8

तीसरे मनु उत्तम हुये। उस समय धर्म की पत्नी सूनृता के गर्भ से पुरुषोत्तम भगवान सत्यसेन नाम से अवतार ग्रहण किया था।

चौथे मनु का नाम तामस था। इस मनवन्तर में हरिमेधा ऋषि की पत्नी हरिणी के गर्भ से हरि के रूप में भगवान ने अवतार ग्रहण किया। इसी अवतार में उन्होंने ग्रह से गजेन्द्र की रक्षा किया था।

आमरण अनशन करके कथा सुन रहे परीक्षित् जी ने विनम्रता पूर्वक गज-ग्राह की कथा सुनने की जिज्ञासा भगवान शुकदेव जी से किये।

अष्टम स्कन्ध के दूसरे अध्याय में यह कथा वर्णित है। त्रिकूट नामक पर्वत विविध प्रकार के वृक्ष, लताओं, वनराइयों से आच्छादित था। उसकी गुफाओं में सिद्ध, चारण, गंधर्व विद्याधर, नाग, किन्नर और अपसरायें प्राय: निवास करते हैं-

सिद्धचारणगन्धर्व विद्याधर महोरगै:।
किन्नरैप्सरोमिश्च क्रीडद्भिर्जुष्ट कन्दर:।। 2।। अं.2 स्क.8

पर्वतराज त्रिकूट की तराई में वरुण जी का एक उद्यान था। उसमें सब ओर फलों-फूलों से सर्वदा लदे वृक्ष शोभायमान थे। मन्दार, परिजात, गुलाब, अशोक, चम्पा, तरह-तरह के आम, पयाल, कटहल, आमड़ा, सुपारी, नारियल, खजूर, बिजौरा, महुआ, साखू, ताड़, तमाल, असन, अर्जून, रीठा, गूलर, पाकर, बरगद, पलास, चन्दन, नीम, कचनार, साल, देवदारु, दाख ईख, केला, जामुन, वेर, रुद्राक्ष, हर्रे, आवला, बेल, कैथ, निबू और भिलावे आदि के वृक्ष लहराते रहते

थे।(आश्रम सिद्धगुफा पर इस समय उद्यान का कार्य भाईलोग कर रहे हैं उनके जानकारी हेतु।)

उस जंगल में बहुत–सी हथिनियों के साथ एक गजेन्द्र निवास करता था। वह अपने झुण्ड के साथ उद्यान के सरोवर में घुसकर जलपिया, फिर जलक्रीड़ा करने लगा। भगवान की माया से मोहित गजेन्द्र उन्मत्त हो रहा था। उसी समय एक बलवान ग्राह ने उसका पैर पकड़ कर गहरे जल में खीचने लगा। गजेन्द्र ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर अपने को छुड़ाने की बड़ी चेष्टा की परन्तु छुड़ा न सका। हथिनियाँ, दूसरे हाथी सहायता पहुँचाकर गजेन्द्र को जल से निकालने का व्यर्थ प्रयास करते रहे। बहुत बड़ा समय गज–ग्राह की लड़ाई होती रही अन्त में गजेन्द्र शिथिल पड़ गया। ग्राह उसे गहरे जल में खींच ले गया। गजेन्द्र अन्त में भगवान की ही शरण लिया। पूर्वजन्म के संस्कार द्वारा गजेन्द्र ने मन को हृदय में एकाग्र किया और स्तुति करने लगा। चौथे अध्याय में गजेन्द्र को पूर्व जन्म में द्रविड देश पाड्यवंशी राजा इन्द्रधुम्न बताया गया है। एक समय वे मलय पर्वत पर एकाग्र मन, मौनव्रती होकर भगवान की उपासना में रत थे। वहाँ भ्रमण करते हुये अगस्त मुनी पहुँचे। उन्होनें देखा यह गृहस्थोचित धर्म का परित्याग कर एकान्त में चुपचाप बैठकर उपासना रत है। इन्द्रद्युम्न पर क्रुद्ध हो शाप दिया– राजा ! तुमने गुरुजनों से शिक्षा ग्रहण किये बिना अभिमान वश परोपकार से निवृत्त होकर मनमानी कर रहा है अतः तुझे हाथी की योनि प्राप्त हो। राजर्षि ने यह समझ कर संतोष किया कि यह मेरा प्रारब्ध ही था–

एवं शप्त्वा गतोऽगस्त्यो भगवान् नृप सानुगः।
इन्द्रद्युम्नोऽपि राजर्षिर्दिष्ट तदुपधारयन्।।11।। अ.3 स्क.8

वही राजा हाथी की योनि प्राप्त किये परन्तु भगवान की स्मृति बनी रही। संकट की महान घड़ीमें आर्तभाव से उसने भगवान का स्मरण करते हुये स्तुति की। प्रभो ! मैं आपको ध्यान पूर्वक नमस्कार करता हूँ। जिनके परम मंगलमय स्वरूप का दर्शन करने के लिये महात्मागण आसक्तियों का त्याग कर, अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये सर्वभूत के भलाई में रत रहते हैं। उन्हीं प्रभु की शरण में मैं हूँ। जिनमें कैवल्य मुक्ति देने का सामर्थ्य है। जो अविनाशी, सर्वशक्तिमान, अव्यक्त, इन्द्रियातीत और अति सूक्ष्म हैं। जो अत्यन्त निकट रहने पर भी दूर जान पड़ते हैं। जो आध्यात्मिक योग द्वारा प्राप्त होते हैं उन्हीं आदिपुरुष परिपूर्ण परब्रह्म परमात्मा की स्तुति करता हूँ–

तमक्षरं ब्रह्म परं परेश
मव्यक्तमाध्यात्मिक योगगम्यम्।
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूर
मनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे।।21।। अ.3 स्क.8

योगी लोग योग द्वारा कर्म, कर्म–वासना और कर्म–फल को भस्म करके अपने योग–हृदय में जिन योगेश्वर भगवान का साक्षात्कार करते हैं – उन प्रभु को मैं नमस्कार करता

हूँ–

योगरन्धितकर्माणो हृदि योगविभाविते।

योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम्।। 27।। अ 3 स्क 8

गजेन्द्र की आर्त पुकार सुनकर चक्रधारी भगवान गरुड़ पर सवार हो दौड़ पड़े। गजेन्द्र को अति पीड़ित देख भगवान ने चक्र से ग्राह का मुँह फाड़ डाला तथा गजेन्द्र को छुड़ा लिया। ग्राह तुरन्त ही मरकर दिव्य शरीर से सम्पन्न हो गया। यह ग्राह पूर्व काल में 'हूहू' नाम का एक श्रेष्ठ गन्धर्व था। देवल ऋषि के शाप से उसे यह ग्राह योनि प्राप्त हुई थी। अपने दिव्य शरीर से भगवान की परिक्रमा करके अपने लोक में चला गया।

गजेन्द्र भी भगवान का स्पर्श पाकर अज्ञान के बन्धन से मुक्त होकर पिताम्बरधारी चतुर्भुज भगवान के ही सारूप्यता को प्राप्त हुआ।

आठवें स्कन्ध के पाँचवें अध्याय में पाँचवे मनु का नाम रैवत बताया गया है। शुभ ऋषिकी पत्नी का नाम था विकुण्ठा उनके गर्भ से भगवान वैकुण्ठ नामक अवतार धारण किया। श्री लक्ष्मी जी के प्रार्थना से उन्होंने वैकुण्ठ धाम की रचना किया।

छठे मनु का नाम चाक्षुष था। वैराज की पत्नी सम्भूति के गर्भ से अजित नाम का अंशावतार ग्रहण किया था।

राजा परीक्षित ने भगवान शुकदेव जी से समुद्र–मन्थन–लीला का वर्णन सुनना चाहा।

श्री शुकदेव जी ने कहा– एक बार श्री दुर्वासा जी वैकुण्ठ लोक से आरहे थे। मार्ग में ऐरावत पर चढ़े देवराज इन्द्र मिले। दुर्वासा जी ने भगवान द्वारा पहनाई माला प्रसाद रूप इन्द्र को दिया। ऐश्वर्य मद में चूर उस माला को ऐरावत के मस्तक पर डाल दिया। ऐरावत ने उसे अपने पैरों तले कुचल दिया। दुर्वासा जी ने क्रोधित होकर शाप दिया कि इन्द्र तुम तीनों लोकों सहित शीघ्र श्रीहीन हो जाएगा। असुरों द्वारा देवताओं का भारी पराजय हुआ। सभी देवता श्रीहीन इधर–उधर छिपते फिरे। ब्रह्मा जी ने स्वयं देखा इन्द्र, वायु शापवस श्री हीन–शक्तिहीन हो गये हैं। अतः हम सभी उन परम प्रभु के शरणागत हों। इस समय प्राणियों के कल्याण हेतु वे सत्वगुण को धारण कर रक्खा है। अतः हम सब उन्हीं जगद्गुरु परमात्मा की शरण ग्रहण करते हैं। हम निज जनों का अवश्य कल्याण करेंगे–

अयं च तस्य स्थिति पालनक्षणः

सत्वं जुषाणस्य भवाय देहिनाम्।

तस्माद् व्रजामः शरणं जगदगुरुं

स्वानां स नो धास्यति शं सुरप्रियः।। 23।। अ 5 स्क 8

ऐसा निर्णय कर देवताओं सहित ब्रह्माजी वैकुण्ठ लोक में जाकर बड़े विस्तार से स्तुति भगवान का किये। हे प्रभो ! आप एक मात्र ज्ञानस्वरूप, प्रकृति से परे एवं अदृश्य हैं। परन्तु सभी

वस्तुओं के मूल में स्थित अव्यक्त हैं। देश, काल अथवा पदार्थ से जिसे जाना नहीं जा सकता। वही आप हर जीव के हृदय में अन्तर्यामीरूप में विराजमान रहते हैं। विचारवान पुरुष योग द्वारा आपकी आराधना करते हैं –

य एक वर्ण तमस : परं त–
दलोक मयव्यक्त मनन्त पारम्।
आसाश्चकारोपसुपर्ण मेन–
मुपासते योगरथेन धीरा:।। 29।। अ.5, स्क 8

ब्रह्मा जी ने बड़ा ही तात्विक, भावयुक्त भगवान की स्तुति विस्तार से किया। तब भगवान श्री हरि उनके बीच हजारों सूर्य तेज से युक्त प्रकट हुये। उन्होंने सलाह दिया जब तक तुम्हारे अभ्युदय का समय नहीं आता दैत्य और दानवों के पास जाकर उनसे संधि कर लो। आगे तुम लोग दैत्यों से मिलकर समुद्र मंथन करना।

आध्यात्मिक प्रगति

प्रो. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ

योगसाधना में भक्तियोग का विशेष महत्व है। परमार्थतः परमात्मा निर्गुण, निराकार, निराधार, सर्वव्यापी सच्चिदानन्द स्वरूप है। वेदवाणी इस सत्य की पुष्टि करती है कि –

कूटस्थो निर्गुणो व्यापी चैतन्यात्मा स्वभावतः।
दृश्यते हि अर्थरूपेण पुरुषैः भ्रान्तदृष्टिभिः।।

अर्थात् सभी प्राणियों में परमात्मा सर्वसाक्षी, निष्क्रिय, निर्गुण, सर्वाधार तथा चैतन्यात्मा के रूप में स्थित है, किन्तु माया के द्वारा उस पर आरोपित मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों के विषय तथा चित्तवृत्तियों के रूप में ही अविद्यामोहित जीवों को दिखाई देता है। यही उसकी त्रिगुणात्मिका माया है। ठीक वैसे ही जैसे अबोध बच्चों को पर्दे पर प्रकाश पर आरोपित फिल्म– संसार दिखाई देता है। अतः मायारचित संसार में मायामोहित जीव की मायिक बन्धन से मुक्ति अत्यन्त कठिन असम्भव सी है। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं स्वीकार किया है कि –

अवजानन्ति मां मूढ़ाः मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्।।
देवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्ययो।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।

अर्थात् अज्ञानी जीव ही परमात्मा को साकार समझते हैं, क्योंकि उन्हें परमात्मा के सर्वनियन्ता तथा सर्वव्यापी स्वरूप का ज्ञान नहीं है। अज्ञानी जीव परमात्मा की त्रिगुणात्मिका माया के स्वरूप को भी नहीं समझ सकते और न मायिक बन्धन से मुक्त हो सकते हैं। माया से मुक्ति पाने के लिए तो मायावी परमेश्वर की शरणागति परमावश्यक है। शरणागति के लिए परमात्मा ने भक्तियोग का विधान किया है, किन्तु भक्तियोग की ब्रह्मधारा केवल सद्गुरु के चरणारविन्दों से प्रवाहित होती है। अतः ईश्वरभक्ति तथा गुरुभक्ति के रहस्यों को जानना अत्यावश्यक है।

सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि गुरुतत्व तथा परमात्मतत्व भिन्न हैं या अभिन्न। भिन्नता द्वैतभाव का प्रतीक है और द्वैतभाव मायाकृत है और माया भ्रान्तिमूलक अविद्या है, नाम तथा रूप यानि सूक्ष्म तथा स्थूल सभी पदार्थ एवं भाव गुणात्मक हैं और गुणों के क्रमपरिणामों का कार्यरूप हैं। इस विषय में वेद का प्रमाण है कि –

यथा स्वप्ने द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः।
तथा जागृत्द्वाभासं स्पन्दते मायया मनः।।
यथा नद्याः स्यन्दमानाः समुद्रेगच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपादिविमुक्तः परमं पुरुषं उपैति दिव्यम्।।

अर्थात् जिस प्रकार स्वप्न में हमारा चित्त ही परमात्मा की गुणमयी माया के द्वारा आकाश, सूर्यादि सहित स्वप्न के संसार की रचना कर देता है, पदार्थों की ग्राह्यता तथा ग्राहकता को निद्रा के अविद्याजनित आवरण में सत्य भासित करा देता है, ठीक उसी प्रकार हमारा चित्त ही जागृत संसार का व्यवहार कराता है। नाम तथा रूप की भ्रान्तिरूप अविद्या ही उसे सत्य भासित कराती है। इसीलिए जिस प्रकार नदियाँ रास्तों के अनेकानेक कष्ट झेलती हुई बहती चली जाती हैं और अन्त में अपना नाम तथा रूप से मुक्ति पाकर समुद्र में मिल जाती हैं तब शान्ति प्राप्त करती हैं उसी प्रकार आत्मज्ञ विद्वान नामरूप की अविद्यारूपी माया से मुक्त होने पर परमात्मभाव रूप समुद्र में मिलकर अक्षय सुख तथा शान्ति को प्राप्त करता है। भगवान श्रीकृष्ण इसी सत्य को स्पष्ट करते हैं कि –

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति।।
सर्वभूतस्थितं यो मां भजति एकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते।।
मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
गुणान् समतीत्य एतान् ब्रह्मभूयाय च कल्पते।।

अर्थात् सिद्धयोगी हो जाने के बाद अविद्या तथा अस्मिता रूपी गुणविकारों से मुक्ति पाकर अपने आत्मस्वरूप को अन्तःकरण से भिन्न सर्वव्यापक सच्चिदानन्द स्वरूप में देख लेता है यानि विशुद्ध बुद्धि में अनुभव करता है, तब उसे यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है कि सृष्टि के समस्त सूक्ष्म तथा स्थूल पदार्थों का कर्ता केवल माया के गुण हैं और वह अपने को गुणातीत स्थिति में पाकर परमात्मभाव को प्राप्त कर लेता है और तभी वह सर्वाधार तथा सर्वव्यापक परमात्मा के साथ एकत्व प्राप्त कर उसी स्वरूप में अभिन्न होकर रमण करता है। अतः सिद्धयोगी सद्गुरु तथा परमात्मा एक ही आत्मतत्व के प्रतीक हैं। किसी एक स्वरूप की भक्ति स्वतः दोनों स्वरूप की भक्ति होती है। द्वैतभाव मिथ्या है, केवल शब्दों का व्यभिचार है। हमारे त्रिकालसत्य वेदशास्त्र भी यही आदेश देते हैं कि –

येनेरिताः प्रवर्तन्ते प्राणिनः स्वेषु कर्मषु।
तं वन्दे परमात्मानं स्वात्मानं सर्वदेहिनाम्।।
यस्य पादांशुसम्भूतं विश्वं भाति चराचरम्।
पूर्णानन्दं गुरुं वन्दे तं पूर्णानन्दविग्रहम्।।
यं यं लोकं मनसा सम्विभाति।
कामयति यांश्च कामान्।।
तं तं लोकं जयति तांश्च कामान्।
तस्मात् आत्मज्ञं अर्चयेत् भूतिकामः।।
सः वेद एतत् परमं ब्रह्म धाम।
यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्।

उपासते पुरुषं ये हि अकामाः।
ते शुक्रं एतत् अतिवर्तन्ति धीराः।।

(मुण्डक उ. 3/21)

अर्थात् मोक्ष के जिज्ञासु को उस पूर्णआनन्द स्वरूप तथा ज्ञान तथा विज्ञान की प्रतिमूर्तिस्वरूप सद्गुरुदेव की अनन्य एवं अव्यभिचारिणि भक्ति करनी चाहिए जो उस परमात्मा का ही सगुणस्वरूप है जिसकी शक्ति पाकर सभी प्राणी अपने–अपने कार्यों में प्रवृत्त होते हैं तथा जिसकी मायाशक्ति से प्रकट हुआ जगत समस्त चित्तों में दैदिप्यमान है। वह आत्मज्ञ महापुरुष मन से जिस–जिस लोक का संकल्प करता है अथवा जिस–जिस कामना का संकल्प करता है, वह इच्छामात्र से उस लोक को प्राप्त कर लेता है और उसकी सभी कामनायें संकल्पमात्र से पूर्ण होती हैं। अतः जिज्ञासुओं को उसी की अर्चना करनी चाहिए, क्योंकि जो भक्त उस ब्रह्मज्ञाता पुरुष की निष्कामभाव से पूजा तथा अर्चना करते हैं वह माया के बन्धनों से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त कर लेते हैं। संसार के मनुष्यों का कल्याण करने के लिए ही परमात्मा स्वयं देहधारी सद्गुरुदेव के रूप में पृथ्वी पर विचरण करते हैं। जिज्ञासुओं के लिए यही परम सत्य है। भक्ति योग का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है कि –

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान् तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।
मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ताः उपासते।
श्रद्धया परयोपेताः ते मे युक्ततमाः मतः।।
ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्तः उपासते।।
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नाचिरात पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।।
मयि मनः आधस्वे मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।।

अर्थात् जो जीव जिस–जिस भावना से मेरी भक्ति करता है, मैं भी अपने सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान मन से उसकी भक्ति करता हूँ यानि उसकी भावना को पुष्ट तथा पूर्ण करता जाता हूँ। इसी उपाय से जीव मेरे मार्ग पर अग्रसर होकर मेरे निकट आते जाते हैं। जो भक्त अपने मन को नित्य अनन्यभाव से मेरे परमात्मस्वरूप के चिन्तन तथा ध्यान में लगाते हैं तथा निष्कपट प्रेम से परिपूर्ण होकर चित्त को मेरे स्वरूप में लय तथा समाहित करते जाते हैं, वही भक्तियोग के अधिकारी होते हैं। शरीरधारी होने के नाते कर्म तो करना ही पड़ता है किन्तु जो कर्मफल को मेरे समर्पण करते हुए मेरी प्राप्ति को ही एकमात्र लक्ष्य मानकर अनन्ययोग यानि अव्यभिचारिणी प्रेमभक्ति से परमात्मा की उपासना करते हैं, उन भक्तों को इस माया के भवसागर से पार करने के लिए मैं परमात्मा शीघ्र ही उनके चित्त में प्रकट होकर अपने ज्योतिमय स्वरूप की ज्ञानज्योति दे देते हैं। जब साधक अनन्यभाव से

भक्ति करता है तब हृदय में गुप्त गुणातीत परमात्मा को भी प्रकट होना पड़ता है। इसके दो प्रमुख रहस्य हैं जोकि स्वयं परमात्मा के मुख से प्रकट हो गये हैं। प्रथम रहस्य है –

भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं हि एतदुत्तमम्।।

तथा द्वितीय रहस्य है कि –

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न च प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्तया ते मयि तेषु चाप्यहम्।।
सर्वभूतस्थितं ये मां भजति एकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि सः योगी मयि वर्तते।।

(गीता)

अर्थात् जब पूर्ण वैराग्य से सम्पन्न होकर लोक तथा धर्म के पापपुण्यात्मक सभी व्यवहारों का चिन्तन त्यागकर जब भक्त एकमात्र परमात्मा से रिश्ता बनाकर स्वरूपशून्यता में अपनी बुद्धि को परमात्मा के विज्ञानमय स्वरूप में प्रवेश करा देता है तब अहंभाव के लुप्त होने से परमात्मा में एकात्मता आ जाती है। इस प्रकार स्वतः ही परमात्मा की ज्ञानज्योति अन्तःकरण को प्रकाशित कर देती है। अन्यथा परमात्मा का न किसी से द्वेष है और न प्रेम है, वह तो सभी प्राणियों में समभाव में स्थित है। इसका कारण भी वेदों में स्पष्ट है कि –

न तस्यं कार्य करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिः विविधैव श्रयते स्वभाविकी ज्ञानवलक्रिया चे।।

(श्वेता. उप. 6/8)

ततः परं ब्रह्मपरं बृहन्तम् यथानिकायं सर्वभूतेषु गूढम्।
विश्वस्य एकं परिवेष्टितारं ईशं तं ज्ञात्वा अमृताः भवन्ति।।

(श्वेता. उप. 3/7)

अर्थात् परमात्मा त्रिगुणात्मिका प्रकृति से परे यानि उत्कृष्ट तथा सृष्टिकर्ता कार्यब्रह्म से भी श्रेष्ठ हैं, क्योंकि यह दोनों शक्तियाँ उसके सर्वव्यापी स्वरूप से प्रकट हुई हैं। किन्तु उसका न कोई कार्य है और न कर्तव्य है, न कोई उसके समान है और न उससे अधिकतर तथापि वह प्रत्येक प्राणी में उसके शरीर के अनुकूल स्वरूप में विद्यमान है, समस्त विश्व का एकमात्र भरण–पोषण तथा धारण करने वाला है, क्योंकि उसके सच्चिदानन्द स्वरूप में ज्ञान, शक्ति तथा व्यापकता स्वभाविकी क्षमता है। अतः उसके इस आश्चर्यमय स्वरूप को जानकर जीव कृतकृत्य होकर अमृतत्व पा जाते हैं किन्तु अनादिकाल से मायानिद्रा में सुप्त जीव के चित्त में ऐसी अनन्या भक्ति का उदय एक दुर्लभ प्राप्ति है, क्योंकि शास्त्र का कथन है कि –

जन्मान्तरसहस्त्रेषु तपोज्ञानसमाधिभिः।
जनानां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते।।

अर्थात् सहस्त्रों जन्मों में निरन्तर कठोर तप, वेदान्तविज्ञान का स्वाध्याय तथा योग समाधियों

का अभ्यास करते–करते जब अन्तःकरण में संचित पापकर्म क्षीण हो जाते हैं तभी शुद्ध अन्तःकरण में परमात्मज्ञान की जिज्ञासा तथा भक्ति का उदय होता है। इस भक्ति के उदय होने में कर्मयोग का तथा क्रियायोग का विशेष योगदान है। इसके दो विशेष कारण भी हैं। प्रथम कारण तो यह कि जिस माया ने जीवों की उत्पत्ति की है वह माया परमात्मा से प्रकट हुई है अतः इस संसार का अस्तित्व परमात्मा पर निर्भर करता है, इसलिए जीवन का उद्देश्य अपने कर्मों से उसकी प्रसन्नता ही होना चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण ने इस ओर संकेत भी किया है कि –

पुरुषः सः परः पार्थ भक्तया लभ्यः तु अनन्यया।
यस्यान्तस्यानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।।

(गीता 8/22)

यतः प्रवृत्ति भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।

(गीता 18/46)

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।

(गीता 8/14)

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो हि आचरन् कर्म परमाप्नोति पुरुषः।।

(गीता 3/19)

अर्थात् संसार के समस्त प्राणी जिसके सर्वव्यापक स्वरूप में स्थित हैं तथा जिसके चैतन्यस्वरूप से यह संसार प्रकट हुआ है, वह परम पुरुष परमात्मा केवल अनन्यभक्ति से जाना जा सकता है। जिसके दिव्य सच्चिदानन्द स्वरूप से समस्त चराचर जगत की उत्पत्ति हुई उसी की अपने निष्काम कर्मों से अर्चना करके आध्यात्मिक सिद्धि सम्भव है, अन्य कोई उपाय नहीं। अतः नित्य निरन्तर अनन्य भाव से जो मनुष्य उस परमात्मा का समाहित चित्त से स्मरण करते हैं, वही युक्त योगी परमात्मभाव को प्राप्त करते हैं। अतएव आत्मसाक्षात्कार के लिए कर्मयोग की साधना अत्यन्त आवश्यक है। कर्मयोग से तात्पर्य है कि फलासक्ति त्याग कर लोकहित में आसक्तिरहित मन से अपने कर्तव्यों तथा दायित्वों का निर्वाह करते हुए चित्त को परमात्मा के स्वरूप में समाहित करना है।

कर्म तो प्रकृति के गुणों के द्वारा किये जाते हैं उनमें जीव की कर्तापन की भावना अज्ञान का द्योतक है। कर्म के साथ जीवात्मा की जो भावना रहती है कर्म का फल उस भावना का अनुसरण करता है। इसीलिए अज्ञानी के लिए कर्म बन्धन है तथा ज्ञानी के लिए परमात्मा की सेवा एवं पूजा है। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण का आदेश तथा संदेश है कि –

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योगः उच्यते।।
बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्मात् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।
कर्मजं बुद्धियुक्ताः हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्ति अनामयम्।।

अर्थात् हे अर्जुन! कर्मफल में जो आसक्ति है उसी से कर्मबन्धन तैयार होता है, क्योंकि आसक्ति वासना का रूप है और वासना चित्त में संस्कार के रूप में संचित हो जाती है किन्तु कर्मफल में आसक्ति न रखते हुए जो कर्म किया जाता है उसकी सिद्धि तथा असिद्धि का चित्त पर प्रभाव नहीं पड़ता इसी को योग कहा जाता है। अतः योग में स्थित होकर कर्म करने से चित्त शुद्ध होता है। इस बुद्धिगत योग से पाप तथा पुण्य के परिचायक कर्मों से मुक्ति मिल जाती है और सुख–दुःख के रूप में कर्म का भुगतान नहीं करना पड़ता। यही कर्मयोग कहलाता है जिसके फलस्वरूप कर्मफल के भुगतान सम्बन्धी बन्धन से मुक्त होकर ज्ञानी मनुष्य जन्म–मृत्यु के आवागमन से मुक्त होकर परमात्मा के अक्षय आनन्दस्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं। किन्तु कर्मयोग की सिद्धि के लिए क्रियायोग की आवश्यकता है, अन्यथा आध्यात्मिक मार्ग के अन्तराय तथा समाधि की अयोग्यता इस बुद्धियोग तथा कर्मयोग को सफल नहीं होने देंगे।

यह 'क्रियायोग' क्या है, इसकी परिभाषा महर्षि पतंजलि ने दिया है कि –

तपस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।
समाधिभावनार्थः क्लेशतनुकरणार्थश्च।।

(योगदर्शन 2/1,2)

संसार का सत्य यही है कि प्रकृति के रूप में परमात्मा की माया से यह पंचभूतादि जड़ सृष्टि प्रकट हुई जैसे कि हमारे चेतन शरीर से अचेतन बाल प्रकट होते हैं। इस जड़ स्थूल सृष्टि के साथ पंच महाभूतों से इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, इन्द्रियों के विषय तथा पंचक्लेशादि सूक्ष्म सृष्टि प्रकट हुई। यह स्थूल तथा सूक्ष्म सृष्टि कूटस्थ तथा सर्वसाक्षी के रूप में परमात्मा के प्रवेश से चेतनमयी बन गयी, जैसे लोहा विद्युत से चुम्बकीय शक्ति पाकर शक्तिवान हो जाता है जिससे सभी विद्युतयुक्त मशीनें अपना – अपना कार्य करने लगती हैं। इस प्रकार हमारे चेतन शरीर कार्यरत तो हो जाते हैं किन्तु चित्त में विद्यमान माया की आवरण शक्ति आत्मा को अपना आलम्बन बनाकर उसे जीवात्मा का भी रूप दे देती है। इस जीवात्मा के माध्यम से माया के प्राणादि अनन्त भाव इस आश्चर्यमय जड़ तथा चेतन जगत के रूप में उदय–अस्त होते रहते हैं। इन रहस्यों को जानने के लिए चित्त में व्याप्त पंचक्लेशादि (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश) गुणविकारों को क्षीण करना तथा वैराग्य को पुष्ट करते हुए उसमें समाधिपरिणाम को लाना परमावश्यक है। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए क्रियायोग परमावश्यक है जिसके तीन अंग हैं – 1. तप, 2. स्वाध्याय तथा 3. ईश्वरप्राणिधान। इन तीनों अत्यन्त महत्वपूर्ण अंगों पर हम संक्षेप में प्रकाश डालेंगे। क्रियायोग का प्रथम अंग तप है। तप से स्थूल शरीर तथा सूक्ष्म शरीर दोनों

को बल मिलता है। तप की परिभाषा में कहा गया है कि –

द्वन्दसहनं तपः।। *(योगदर्शन)*

मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्यैकाग्रयं परमं तपः।।

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः।

अफलकांक्षिभिः युक्तैः सात्विकं परिचक्षते।।

(गीता /7/17)

अर्थात् शरीर, मन तथा बुद्धि के द्वारा द्वन्दों को सहन करने के कर्म को तप कहते हैं। यह द्वन्द दो प्रकार के हैं। एक तो माया की विक्षेप शक्ति द्वारा संचालित कारण–कार्य रूपी गुणात्मक द्वन्द हैं तथा दूसरे क्लेशादि गुणविकारों द्वारा संचालित मानसिक द्वन्द हैं। इनके प्रभावों को समत्वभाव से सहन करना तपस्या है। इस तपस्या से शक्ति तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। आध्यात्मिक प्रगति के लिए मन तथा इन्द्रियों की एकाग्रता की वृद्धि का अभ्यास भी उत्कृष्ट तप है। यह तप सात्विक होना चाहिए जिसमें परमात्मा के प्रति श्रद्धाभक्ति के साथ केवल परमात्मज्ञान की जिज्ञासा ही होना चाहिए तथा अंशमात्र भी तपस्या के फल के रूप में किसी भी प्रकार की भोगवासना नहीं होना चाहिए। तप के साधन के रूप में परमात्मा ने हमें शरीर, वाणी तथा मन की सुविधायें प्रदान की हैं। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने हमें गीता में यह संदेश दिया है कि –

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।

ब्रह्मचर्यं अहिंसा च शारीरं तप उच्यते।।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।

स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।।

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।

भावसंशुद्धि इत्येतत् तपो मानसमुच्यते।।

अर्थात् कर्म करने में शरीर को सर्दी–गर्मी, घातप्रतिघात आदि द्वन्दों का सामना करना पड़ता है, मन को सुख–दुःख तथा अनुकूलता–प्रतिकूलता आदि द्वन्दो का सामना करना पड़ता है तथा बुद्धि को शुभ–अशुभ, पाप–पुण्य तथा धर्म–अधर्म आदि द्वन्दों का सामना करना पड़ता है फिर भी सभी परिस्थितियों में समत्वभाव से प्रसन्नतापूर्वक कर्म कर्तव्यबुद्धि से करते जाना तप है। इसमें देवता, ब्राह्मण, गुरुदेव तथा विद्वानों की सेवा तथा पूजा करना, शौच, सौम्यता, ब्रह्मचर्य तथा अहिंसादि नियमों का पालन शारीरिक तप है, अन्य जीवों को कष्ट न देने वाले वाक्य, सत्य तथा हितकारी भाषा का प्रयोग तथा स्वाध्याय वाणी का तप है। सदैव मन में प्रसन्नता बनाये रखना मौनवृत का पालन, इन्द्रियों पर विषयों के प्रति रागद्वेष पर नियन्त्रण तथा चित्तशुद्धि के लिए प्रयासरत रहना मानसिक तप है। इन सभी तपों का एकमात्र लक्ष्य अन्तःकरण की शुद्धि है, तभी यह कर्मयोग है।

चित्त को सांसारिक इच्छाओं से मुक्त कर आध्यात्मिक चिन्तन में एकाग्र करना स्वाध्याय है। स्वाध्याय का परमात्मदर्शन में विशेष योगदान है, क्योंकि शास्त्र का कथन है –

स्वाध्यायात् योगमासीत् योगात् स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याययोगसम्पत्या परमात्मा प्रकाशते।।

अर्थात् स्वाध्याय का प्रमुख अंग मन्त्रजप है, क्योंकि जप करने से मन मंत्र में लय होता है, लयता से गुरुशक्ति तथा देवशक्ति चित्त का शुद्धिकरण करती है, शुद्धि से ध्याय–समाधि की योग्यता बढ़ती है और चित्त का योग में प्रवेश होता है। योग से स्वाध्याय पुष्ट होता है। इस प्रकार जब स्वाध्याय तथा योग के संयोग से अन्तःकरण शुद्ध होता जाता है, माया का मलावरण क्षीण होता जाता है तब स्वतः ही रजोगुण तथा तमोगुण पर सतोगुण का आधिपत्य हो जाता है और सतोगुण के प्रकाश में परमात्मा का स्वरूप चित्त में प्रकाशित होने लगता है। क्रियायोग का तीसरा महत्वपूर्ण अंग है 'ईश्वरप्रणिधान' जिसका अर्थ है कि ईश्वर की शरण में आत्मसमर्पण करना। जब कोई अपराधी राजा की शरणागति पा जाता है तब राजा के सैनिक उसे बन्दीग्रह में डालते हैं। ईश्वर राजा है तो माया उसकी सेना, अतः ईश्वर की शरणागति में आये साधक के मायिक बन्धन स्वतः टूट जाते हैं। वेदवाणी इस तथ्य की पुष्टि करती है कि –

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य सृष्टारं अनेकरूपम्।
विश्वस्य एकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।

(श्वेता. उप. 5/13)

अर्थात् ईश्वर इस संसार का सृष्टा, भर्ता तथा नियन्ता है जोकि इस मायावी रचना के मध्य अनेक रूपों में अनन्त तथा अनादि है तथा विस्तार वाला होकर सर्वव्याप्त तथा सर्वाधार है। अतः उसकी ही कृपा से जो उसके इस दिव्य स्वरूप को जान लेता है वह माया के बन्धनों से मुक्त होकर अमर हो जाता है। वह ईश्वर कहाँ मिलेगा और उसका ज्ञान कैसे होगा? इस पर वेदवाणी का कथन है –

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनः यद्वाचो हि वाचं प्राणस्य प्राणः।
चक्षुसश्च चक्षु अतिमुच्य धीराः प्रेत्य अस्मात् लोकात् अमृताः भवन्ति।।

(केन उप. 1/2)

सम्प्राप्य एनं ऋषियो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः।
ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीराः युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति।।

(मुण्डक उप. 3/2/5)

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामाः ये अस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्यो अमृतो भवति अत्र ब्रह्म समुश्नते।।

(कठ. उप. 2/3/14)

अस्ति इत्येव उपलब्धव्यः तत्वभावेन चोभयोः।
अस्ति इत्येव उपलब्धस्य तत्वभावः प्रसीदति।।

(कठ. उप. 2/3/13)

अणोरणीयान् महतोमहियान् आत्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।

तमक्रतुं पश्यति बीतशोकः धातुः प्रसादात् महिमानमीशम्।।

(श्वेता. उप. 3/20)

अर्थात् प्रत्येक शरीर में ईश्वर वह शक्ति है जिसको हमारे श्रोत्र सुन नहीं सकते अपितु जिससे श्रोत्र सुनने की शक्ति पाते हैं, जिसका हमारा मन मनन नहीं कर सकता अपितु जिसकी शक्ति पाकर मन मनन करता है, जिसके विषय में हमारी वाणी कुछ भी बोल नहीं सकती अपितु जिसकी शक्ति पाकर वाणी बोलती है, जो हमारे प्राणों का भी प्राण है तथा हमारे चक्षुओं का भी चक्षु। जो हमारी बुद्धि की भी बुद्धि है उसको जानने के लिए इन सबके व्यापारों को रोक कर संकल्परहित निर्मल चित्त में उसके ज्योतिर्मय स्वरूप की अनुभूति की जा सकती है, क्योंकि वह ईश्वर सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम तथा महान से भी महानतम है और प्रत्येक प्राणी की बुद्धिरूपी गुफा में गुप्त है। जब हृदय में आश्रित सभी कामनारूपी संकल्पों का नाश हो जाता है तब शोकरहित बुद्धि उसी ईश्वर की कृपा से उसके निर्विकल्प महिमामय स्वरूप का अनुभव करती है। उसकी सत्ता की अनुभूति उन ऋषियों को होती है जो ज्ञानविज्ञान से तृप्त हैं, जिनका चित्त गुणातीत स्थिति में स्थित है, जो युक्तयोगी होकर आत्मस्वरूप हो चुके हैं, तत्वभाव में स्थित तत्वज्ञान प्राप्त कर चुके हैं और जिनका विशुद्ध अन्तःकरण ईश्वर की कृपा से ईश्वर के सर्वव्यापी सच्चिदानन्द स्वरूप से प्रकाशित है। जब तक चित्त में मनोवृत्तियों द्वारा रचित दृश्यजगत है तब तक तो चित्तवृत्तियों का ही ज्ञान रहेगा, परमात्मा का स्वरूप और उसकी महिमा का ज्ञान प्रकट हो ही नहीं सकता। इसका महर्षि पतंजलि ने स्पष्ट कारण दिया है कि –

चितेः अप्रतिसंक्रमायाः तदाकारोपत्तौस्वबुद्धिसंवेदनम्।।

(योगदर्शन)

अर्थात् आत्मा निर्गुण तथा निष्क्रिय है तथापि बुद्धि के साथ तदाकारता के कारण बुद्धिसम्वेदना से प्रभावित रहती है।

न्यूं बोले गुरु जी

जगदीश राए बंसल 'अधम'

जिस प्रकार मालयानी पर्वत पर चन्दन के वृक्षों के आस–पास लहराते वृक्षों में भी चन्दन की सुगन्ध हो जाती है उसी प्रकार से पतित पावन अनादि सिद्ध गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज की सुगन्ध उनकी जन्म स्थली श्री अलुपुर धाम से मात्र चार कि.मी. की दूरी पर लगते गाँव कुराना में भी फैल गई। गुरुदेव भगवान समझाया करते थे कि :–

यस्मिन देशे वसेत योगी ध्यान योग विचक्षणः।
सोऽपि देशः भवेत पूतः किं पुनस्तस्य बाँधवा।।

अर्थात् जिस देश में एक योगी वास करता है, वह देश का देश पवित्र हो जाता है........ इत्यादि। तद्नुसार अपने दादा गुरु अखण्ड ज्योति महाप्रभू श्री राम लाल जी महाराज के आदेशानुसार अपने संस्कारी बच्चों के कल्याणार्थ सन् 1952–53 में एक मंजे हुए पहलवान और योग शक्तियों से भरपूर सिद्धों के सरदार गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने अकेले ही योग के डंके का बिगुल कुराना गाँव में पूज्यवर श्री हर प्रसाद शर्मा अध्यापक के निवास स्थान पर बजा दिया। गुरुदेव जी यहाँ रह कर इस गाँव के साथ लगते " झन्डू का बाग " नामक स्थान पर लम्बे–लम्बे कार्यक्रमों का आयोजन किया करते थे।

योग का ऐसा डंका बजाया, वायु मंडल यौं हर्षाया
क्यारी खिल गई सब पुष्पन की, सब कृपा गुरुवर की।

आपको याद दिलाता चलूं कि अहैतुकी कृपा के सागर गुरु देव जी ने पुज्यवर मास्टर जी को त्राटक सिद्ध कराया था। फलस्वरुप मा. जी को कई सिद्धियाँ प्राप्त हो गई। यहाँ तक कि वे अमावस की काली रात्री में भी सूई में धागा डालने में सक्षम थे। आराध्यदेव जी कुराना के विषय में बतलाया करते थे कि कुराना संकीर्तन का दिव्य प्रभाव केवल सम्भ्रान्त मनुष्यों पर ही नहीं अपितु पशुओं पर भी देखने को मिलता था......आदि।

मास्टर जी के सुपुत्र एवं हमारे आदरणीय गुरु भाई वर्तमान में दिल्ली निवासी श्री रामेश्वर दत्त, श्री कृष्ण दत्त और श्री विष्णु दत्त शर्मा के परिवारों पर त्रयलोक पावन गुरुदेव की अनुकम्पा से सिद्धयोग के इतने बादल बरसते रहे हैं कि श्रीमानों की झोली ही छोटी पड़ जाती है। जैसे अबोध शिशु को अपनी माँ की गन्ध आती है, उसी तरह ये परिवार गुरु तत्व की गन्ध के जिज्ञासु हैं। इन भाईयों पर हुई गुरु कृपाएँ सिद्धयोग पत्रिका और कमलेश्वर वन्दना एवं श्री सिद्ध गुफा वन्दना में पढ़ने को मिलती रही हैं। इसी प्रकार का एक और कृपा प्रसंग श्री विष्णु शर्मा जी ने उन्नीस अप्रैल 2016 को अपने आर.के. पुरम आश्रम में इस प्रकार बतलाया कि–

यह बात अक्टूबर 2015 की है। मेरा 42 वर्षीय सुपुत्र श्री चन्द्रशेखर उल्टी – दस्त के रोग से ग्रस्त हो गया। देखते ही देखते उसका वजन 85 कि. से घटकर 47 कि. रह गया। हम उसे बसन्त कुन्ज स्थित एल. बी. एस. अस्पताल ले गए। वहाँ चिकित्सकों ने तरह–तरह की टैस्टिंग करके ENDOSCOPY अलसर एवं आन्तों में जख्म घोषित करके पेसेन्ट को अखिल भारतीय आयु विज्ञान संस्थान अर्थात् एम्स रैफर कर दिया। हम पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा सिद्धलोकाधिपति जी के अतिरिक्त हमारा कोई ठोर ठिकाना नहीं है। अतः श्री चरणों में आर्त पुकार के स्वरः ही निकल पड़े कि:–

तर्ज – गाड़ी आले –
अलुपुर आले, रोग भगादे, रख दे सिर पर हाथ
गुरु जी हम हार गए........(1)

तेरी गोदी के बच्चे हैं – अपनी उम्र के कच्चे हैं,
आसरा तेरा तकते हैं – तेरे दर्शन को तड़पते हैं
तेरे शेखर का यह हाल,
गुरु जी हम हार गए........(1)

मीरां जैसी शक्ति नहीं है – शबरी जैसी भक्ति नहीं है
पतंजलि जैसी बूंटी नहीं है – शारदा जैसी बुद्धि नहीं है
आकर करो उपचार,
गुरु जी हम हार गए........(2)

पल पल हमें दिया सहारा – बूंटी से हमें मिला छुटकारा
बिन पतवार के तेरा सहारा – पलट दे गुरु जी भाग हमारा
तेरे चरणों में अमृत धार,
गुरु जी हम हार गए........(3)

तदुपरान्त हम शेखर को एम्स ले गए। वहाँ डाक्टरों ने पिछली रिपोर्ट देखकर हमसे पूछ–ताछ की फिर शेखर को देख कर बोले सारे टैस्ट यहाँ होंगे। हफ्ते बाद की तिथि दे दी और तब तक के लिए ये गोलियाँ सेवन करें। हम अपने घर लौट आए। मगर मन में गुरु जी के प्रति विचार रहे थे कि:–

हम चुपके से मनुहार किया करते हैं,
हर पल आपको याद किया करते हैं।
एक दो नहीं घर में सभी कहा करते हैं,
हम नींद में आपका नाम लिया करते हैं।।

नींद में भी नाम लेते हैं तो अशुतोष भगवान कहाँ दूर हैं अतः

सपने में मेरे गुरुजी आए – धोती पल्ला पकड़े रे।
मुख चन्दा सा चमके रे वो खिल खिला हंसाए रे।।
पद चाप पड़ी कर्णन में – सामने लीला धारी थे
कर दण्डवत, करवट लीनी – घर वाले मंडराए थे
बिगड़ी बनाओ शेखर की – जय–जय देवा रे।

सपने में ....(1)

सुनो लल्ला त्रिलोकी बोले – शेखर को हमीं लाए हैं
कुछ दैविक पूजा कर देना – हम रोग भगाने आए हैं
चढ़ी खुमारी का सपना टूटा – गुरु जी पुकारूं रे।

सपने में ....(2)

अर्थात् एक महत्त्व कांक्षी रात्री को चन्द्र शेखर के स्वप्न में स्वयं श्री जगदीश्वर जगन्नाथ गुरु देव पधारे। शेखर ने चरण स्पूर्श दण्डवत प्रणाम किया। तब तक घरवालों ने गुरु देव को घेर लिया और चल पड़ा कुराना गाँव के लाड़–प्यार का दौर........। सभी एक साथ अपने अपने मखमली स्वरों से शेखर की बीमारी बारे मनुहार करने लगे। तब न्यू बोल्ये गुरु जी, लल्ला– सुनों, तुम्हें पता है हम शेखर को कहाँ से लाए थे ? हम यहाँ उसी प्रयोजन से आए हैं। देखो तुम ऐसा करो कि पाँच रू. की प–र–ल और पाँच रु. के लाची दाने (अर्थात छोटे–छोटे गोल–गोल सफेद–सफेद मीठे–मीठे दाने) हमें दे दो। घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है, प्रभू जी सब ठीक कर देंगे। बातें तो और भी हुई मगर सिद्ध गुरु जी की भाषा की गहराई का मिठास अनुवाद में नहीं लिखा जा सकता।

प्रातः सूर्य नारायण की सिंदूरी आभा के साथ जैसे ही पूर्व दिशा मुस्काई, मेरे प्रिय शेखर ने मुझे स्वप्न में करूणा निधान गुरुदेव जी महाराज के अवलोकन (दर्शन) एवं विलक्षण अमृत वाणी सुनाई। **योगी वचन पलटे नहीं–पलट जाय ब्रह्माण्ड**। अतः गुरु आज्ञा शिरोधार्य कर, मैं उक्त प्रसादी लेकर अकारण दयालु अनाथ नाथ के दरबार में आर. के. पुरम आश्रम पेश हुआ। मैंने दण्डवत प्रणाम कर प्रसादी श्री चरणों में समर्पित की तथा दिव्य आरती गाई...........इत्यादि।

न जाने प्रभू जी किस बात पर यों ही रीझ जाते हैं।
भिलनी के बेर और सुदामा के चावल रूच–रूच खाते हैं।।

तदउपरान्त टैस्ट दिवस पर हम एम्स गए। मार्ग में पुत्र शेखर ने बतलाया कि पापा जी डॉक्टर मुझ पर नाराज हो सकते हैं क्योंकि दवाई तो मैंने खाई ही नहीं। एम्स में क्रम–क्रम से सभी टैस्ट किए गए। परन्तु आश्चर्य ! महान आश्चर्य ! प्रत्येक टैस्ट की रिपोर्ट नारमल आ रही थी। हैरान डॉ. मशीनों को चैक कर रहे थे। अन्ततः निर्णय सुना दिया कि इसको कोई व्याधी नहीं। अब कोई दवा नहीं खानी। शेखर की फिटनैस रिपोर्ट दे कर हमें अलविदा किया।

अपार महिमा योगी की साधक पार उतारे।
ज्ञानी ध्यानी संयमी वर्णन करते–करते हारे।।

एम्स से लौटते समय अहेतूकी कृपा सिर चढ़ कर बोल रही थी। पिता–पुत्र में स्वप्न की बातों का दौर चल पड़ा।

पिता– शेखर ! के बोल्ये गुरु जी?

शेखर– पापाजी , न्यूं बोल्ये गुरु जी............।

पिता – श्री जिन गुरुदेव के श्री चरणों का ध्यान करने से विविध कष्ट मिट जाते हैं, जो प्राणियों के अन्दर अन्तर्यामी रुप से विद्यमान रहते हैं, जिन्हें शंकर भोले बाबा स्वयं प्रणाम करते हैं, ऐसे कल्याण धन सिद्धेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के कोमल चरणों में मेरा कोटि–कोटि प्रणाम।

जय गुरु देव।

आत्म संयम

आत्म संयम प्रत्येक साधक के जीवन में आवश्यक है। गीता में योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि–

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राण कर्माणि चापरे।

आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते।।

अर्थात् योगी, साधक जो साधन रत हैं वे इन्द्रियों की सम्पूर्ण क्रियाओं को और प्राणों की क्रियाओं को ज्ञान से प्रकाशित आत्म संयम योग रूप अग्नि में हवन किया करते हैं। वास्तव में सद्गुरु द्वारा प्रदत्त मन्त्र का जाप करते हुए उस परमात्मा के सिवाय किसी का भी चिन्तन न करना ही इन्द्रियों और प्राणों का हवन कहलाता है। बाह्य मुखी इन्द्रियों की अन्तर्मुखता ही आत्म संयम है।

चंचल मन को आत्म संयम में लगाने की युक्ति बताते हुए भगवान पतंजलि ने योग सूत्र में बताया कि

' त्रयमेकत्र संयमः '

अर्थात् किसी एक ध्येय विषय में तीनों (धारणा, ध्यान और समाधि) होने से संयम कहलाता है। आत्म संयम से मन एकाग्रता की ओर धीरे–धीरे बढ़ने लगता है। भौतिक कार्य भी आसान दिखने लगते हैं। साधक जबयोग के विभिन्न सोपान यम नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार को क्रमशः पार करते हुए आगे बढ़ता है तो इन सबके पश्चात् तीन अंग धारणा, ध्यान, समाधि प्रारम्भ हो जाता है। प्रत्याहार कठिन चढ़ाई का मार्ग कहा गया है। क्योंकि इसमें मन को बार–बार अपने ध्येय वस्तु पर लाने का प्रयास किया जाता है। ज्ञानेश्वर महाराज ने अपने ज्ञानेश्वरी में कहा कि यह प्रत्याहार बड़ा फिसलन वाला रास्ता है। यहाँ साधक के मार्ग में इतनी फिसलन होती है कि वह आसानी से आगे के सोपान पर बढ़ने के लिए बड़ा प्रयत्न करना पड़ता है। सद्गुरु की कृपा हो तो साधक इस मार्ग से आगे बढ़ जाता है। सद्गुरुदेव योग्य एवं सद्पात्र शिष्य को इस मार्ग को सुगम बनाने के लिये तो हमेशा तैयार रहते हैं। कदाचित साधक की कमज़ोरी से कठिनाई आती है। लेकिन सतत् लगा साधक अपनी श्रद्धा और गुरुवाला होकर फिसलते हुए भी रास्ता तय कर ही लेता है। भगवान ने गीता में साधक को साधन की तथा उसे करने की बड़ी ही सूक्ष्म किन्तु आसान रीति बतायी है। साधक कहाँ और कैसे बैठ कर साधन में लगे –

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिर मासनमात्मनः।

नात्युच्छ्रितं नाति नीचं चैलाजिन कुशोत्तरम्।।

अर्थात् साधक को चाहिए वह शुद्ध भूमि जो गोवर से लिपा हो, आसन जो न तो अधिक ऊँचा हो और न तो बहुत नीचा हो। ऐसी भूमि पर कुशा की चटाई एवं मृगछाला अथवा शुद्ध वस्त्र (टाट, कम्बल) बिछा हो। ऐसे स्थान पर आसन को लगाना चाहिए। ऐसे एकान्त स्थान पर साधक अपने मन को एकाग्र करने (आत्म संयम) के लिए चित्त एवं इन्द्रियों की विभिन्न क्रियाओं को अपने आत्म नियंत्रण में करने के लिए अभ्यास करें। उस समय वह अपने पूरे शरीर को एक समान एवं (रीढ़ की हड्डी सीधी करके) अपने आसन पर बैठे। साधन के लिए समस्त साधक समुदाय के लिए रीढ़ की हड्डी को सदैव सीधे करके ही बैठने का प्रयास करना चाहिए। आसन भी दृढ़ होना चाहिए। जिससे अधिक समय तक बैठा जा सके। पुनः अपने आँखों को नीचे की ओर करके नासिका के अग्रभाग को बड़ी सहजता एवं सरलता से देखनी चाहिए। उससे हमारा मन अन्य गतिविधियों की ओर नहीं जायेगा। साधक को शुद्ध शान्त मन से गुरुपदिष्ट मंत्रों का जप एवं स्वरूप चिन्तन करते हुए आत्म संयम करें। क्रमशः साधन के उच्च सोपानों को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। आत्म संयम की यह पद्धति भी सरल और उपयोगी है। योग दर्शन का सूत्र है–

"**तज्जपस्तदर्थभावनम्**" अर्थात् उस परमात्मा का उसके स्वरूप का चिंतन करते हुए जप करना। ईश्वर की शरणागति एवं अनन्य भक्ति का सहज रूप है। संत कबीर ने भी इसी प्रकार सद्गुरु के शरणागति के तथा उसके फल के बारे में बताते हुए कहा कि–

बलिहारी गुरु आपणै द्योहाड़ी के बार।

जिनि मानिष तै देवता करतंन लागीवार।।

अर्थात हे सद्गुरु मैं आप पर पूरी तरह से न्योछावर हूँ। यहाँ द्यौ (रात दिन) हाड़ी (शरीर) से तात्पर्य है। समय का कोई बंधन ही कबीर ने नहीं किया। साधक चौबीसों घण्टे ईश्वर के शरणागति में ही रहना चाहता है। क्योंकि आप ने हमें मनुष्य से देवता बना दिया है। ऐसा करने में आपने कोई समय ही नहीं लगाया। साधक पूरी तरह कृतकृत्य हो गया। आत्म संयम को पुष्ट करते हुए उसका परिणाम बताते हुए कहा है कि –

प्रशान्ता विगत भी ब्रह्मचारि व्रते स्थितः।

मनः संयम्यमच्चित्तो युक्त आसीत् मत्परः।।

युञ्जन्नेव सदात्मानं योगी नियत मानसः।

शान्ति निर्वाण परमां मत्संस्थामधिगच्छति।।

किसी भी साधक को इन दोनों श्लोकों के अर्थ को जानने के लिए ज्ञानदेव की ज्ञानेश्वरी का स्वाध्याय करना चाहिए। जिसमें उन्होंने कुण्डलनी जागरण की प्रक्रिया को सरल शब्दों में बताया। जिससे साधक में आत्म संयम की दृढ़ता स्वाभाविक बन जाती है। उन्होंने कहा है

कि जब क्रियाओं के संयम का योग के साथ मिलाप होता है तब यह शरीर पावन प्रयागबन जाता है।

आत्म संयम से साधक के मन में धैर्य एवं सहनशीलता भी स्वाभाविक रूप से आता है। सहनशीलता आत्मिक शौर्य का ही गुण है। कुछ लोग इसे शायद कायरता एवं उदासीनता मानें किन्तु योगी श्री एकनाथ जी महाराज का चरित्र पढ़ा जाय तो ज्ञान होगा। महाराज पर एक यवन ने एक सौ बार थूका था। महाराज योगी एकनाथ जी ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। बल्कि एक सौ बार गंगा में स्नान किया। अंततः थूकने वाला ही उनके चरणों पर गिर पड़ा। अपने अपराध का क्षमा माँगने लगा। परन्तु महाराज श्री एकनाथ जी उसे गले से लगाते हुए कहा– भईया तुम्हारे कारण हमने एक सौ बार माता गंगा के गोद में जाकर स्नान करने का मौका मिला। तुमने हमारे उपर बड़ा उपकार किया है।

वस्तुतः आत्म संयम का जीवन में बड़ा महत्व है। हमारे आश्रम के अनेकों गुरुभाइयों का चरित्र देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। आत्म संयमी व्यक्ति के मन से षड्दोष मनुष्यों के समाप्त हो जाते हैं। आज समाज में इन्हीं दोषों को समाप्त करने की आवश्यकता है। जो योग से ही संभव है। विभिन्न प्रकार की भौतिक और आध्यात्मिक समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। इन से निजात पाने के लिए आत्म संयमी बनना आवश्यक है।

ग़ज़ल

भूपेन्द्र ' अंकुश ' जलेसर

बिहारी से नैना मिलाकर तो देखो।
नयनों में मन को भुलाकर तो देखो।।टेक।।

तुम्हारी व्यथायें ज्यों ही सुनेंगे,
आयेंगे दौड़े ; बुलाकर तो देखो।।1।।

आशीष लाखों तुमको मिलेंगे,
प्यासे को पानी पिलाकर तो देखो।।2।।

संसार भर में तिमिर ही तिमिर है,
कहीं एक दीपक जलाकर तो देखो।।3।।

जरूरत न होगी दर्शन की तुमको,
श्वासों में सुमिरन घुलाकर तो देखो।।4।।

सिन्धु में बिन्दु तभी तो मिलेगी,
अपने अहम् को गलाकर तो देखो।।5।।

योग-आसन

वृक्षासन

वृक्षासन का लक्षण श्री महामुनि घेरण्ड जी ने इस प्रकार बताया है -

वामोरुमूलदेशे च याम्यं पादं निधाय च।
तिष्ठेत्तु वृक्षवद्भूमौ वृक्षासनमिदं विदु:।।

अर्थात् अपने बायें पैर की जंघा पर दाहिने पैर को जमा कर एक ही पैर से वृक्ष के समान स्थिर भाव से खड़ा रहे। इसी का नाम वृक्षासन है।

विधि– सीधे समभाव से खड़े होकर अपने दाहिने पैर को मोड़ कर बायें पैर की जंघा पर जमा कर रख दें व वृक्ष की तरह स्थिर भाव से खड़े रहें। इसी को वृक्षासन कहते हैं।

समय– साधारण। मिनट से आरम्भ करके 2 या 3 मिनट पैर बदल–बदल कर, कर लेना चाहिये।

फल– शारीरिक दृढ़ता, स्थैर्य एवं सहिष्णुता के भाव पुष्ट होते हैं।

योग स्वस्थ जीवन की कला और विज्ञान है

दिनेश चन्द्र शर्मा

योग मात्र व्यायाम नही है। यह स्वस्थ जीवन की कला एवं विज्ञान है। योग एक आध्यात्मिक अनुशासन एवं अत्यन्त सूक्ष्म विज्ञान पर आधारित ज्ञान है जो मन और शरीर के बीच सामंजस्य का कार्य करता है। यौगिक ग्रन्थों के अनुसार योग का अभ्यास व्यक्तिगत चेतनता को सार्वभौमिक चेतनता के साथ एकाकार कर देता है। इसके माध्यम से मनुष्य शरीर एवं मन के बीच सामंजस्य स्थापित कर आत्म साक्षात्कार को प्राप्त करता है। नियमित योग अभ्यास से सभी त्रिविध प्रकार के दुःखों से निवृत्ति को प्राप्त कर साधक स्वास्थ्य, प्रसन्नता और सामंजस्य का अनुभव प्राप्त कर सकता है।

गुरुदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने व्याख्यानों में कहा करते थे कि योग के पवित्र मार्ग का अवलम्ब लेने वाले प्रत्येक साधक को यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि दुखों की अत्यन्त निवृत्ति का परम साधन योग ही है। इससे ही साधक अपने नित्य स्वरूप एवं परम कल्याण को प्राप्त हुआ करता है।

योग विद्या का उद्‌भव हजारों वर्ष प्राचीन है। श्रुति परम्परा के अनुसार भगवान शिव योग विद्या के प्रथम आदि गुरु या आदि योगी हैं। हजारों वर्ष पूर्व आदि योगी भगवान शिव ने योग का ज्ञान पौराणिक सप्त ऋषियों को दिया था। इन ऋषियों ने योग विद्या का प्रसार संसार में किया।

वैदिक एवं उपनिषद परम्परा, शैव, वैष्णव, व तान्त्रिक परम्परा, भारतीय दर्शन, रामायण, गीता, महाभारत, बौद्ध एवं जैन परम्पराओं में और विश्व की लोक विरासत में भी योग मिलता है। सिन्धु घाटी और सरस्वती घाटी की सभ्यताओं में योग साधना करती अनेक आकृतियों, मुहरों और जीवाश्म अवशेष इस बात का प्रमाण हैं कि प्राचीन भारत में योग का अस्तित्व था।

योग का अभ्यास पूर्व वैदिक काल में भी किया जाता था। महर्षि पतंजलि जी ने उस समय के प्रचलित प्राचीन योग अभ्यासों को व्यवस्थित एवं वर्गीकृत किया और इस ज्ञान की " पातंजल योग सूत्र " ग्रन्थ के रूप में मानव कल्याण हेतु रचना की। पतंजलि के बाद भी अनेक ऋषियों एवं योग के आचार्यो ने योग अभ्यासों और यौगिक साहित्य के माध्यम से इसके विकास में महान योगदान दिया।

परन्तु समय के प्रभाव से योग विद्या धीरे–धीरे लुप्त प्राय होती गई। ऐसे समय में योगावतार प्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने अवतरित होकर योग विद्या के गूढ़ ज्ञान का पुनः प्रसार किया और योग का दिव्य सन्देश जगत को दिया कि योग ही दिक और अविनाशी जीवन है। योग योगेश्वर प्रभु श्री राम लाल जी महाराज ने लुप्त योग विद्या के पुनरूद्धारं के लिए योग साधन आश्रमों की स्थापना कर योग का प्रकाश फैलाया। गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए देश में व्यापक भ्रमण कर योग विद्या का प्रसार किया और साधकों को दिव्य अनुभव भी हुए।

योग प्राचीन काल से लेकर आज तक सम्पूर्ण विश्व में फैला है। योग दिन प्रतिदिन विकसित

और समृद्ध होता जा रहा है। आज सभी को योग अभ्यास से व्याधियों–बीमारियों की रोकथाम, देख भाल एवं स्वास्थ्य लाभ मिलने और आध्यात्मिक पथ पर भी सफल होने का दृढ़ विश्वास है। योग व्यक्ति के शरीर, मन, भावना और ऊर्जा के स्तर पर कार्य करता है।

योग अभ्यास समर्थ गुरु/अनुभवी शिक्षक की देखरेख में ही करना चाहिए। योग की सभी प्राचीन व्याख्याओं में भी इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि समर्थ गुरु के मार्ग दर्शन में योग अभ्यास करना चाहिए। समर्थ गुरुदेव ही साधक की योग्यता और आवश्यकता के अनुसार सम्यक् मार्ग दर्शन एवं योग सिद्धान्तों का सही संयोजन करा सकते हैं। साधक को गुरुदेव की शरण में जाकर गुरु उपदेश के अनुसार अपनी उच्चतम प्रगति के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

योग की महत्ता को आज पूरा विश्व समझ रहा है। सम्पूर्ण विश्व में 21 जून को हर वर्ष 'अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस' के रूप में श्रद्धा के साथ उत्साह पूर्वक मनाया जा रहा है। सयुंक्त राष्ट्र महासभा में 11 दिसम्बर 2014 को सर्व सम्मति से, हर वर्ष 21 जून को ' अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाने का संकल्प, अनुमोदित हुआ। अपने संकल्प में सयुंक्त राष्ट्र महासभा ने स्वीकार किया कि योग स्वास्थ्य और कल्याण के लिए पूर्णता वादी दृष्टि कोण प्रदान करता है। योग विश्व की जनसंख्या के स्वास्थ्य के लिए और उनके लाभ के लिए विस्तृत रूप से कार्य करेगा। योग जीवन के सभी पहलुओं में सामंजस्य भी बैठाता है और इसीलिए बीमारियों की रोकथाम, स्वास्थ्य प्रोत्साहन और जीवन शैली सम्बन्धी कई विकारों के प्रबन्धन के लिए जाना जाता है।

योग के आचार्यों ने अष्टांग योग अर्थात् योग के सभी आठ अंगों पर ध्यान देने पर बल दिया है। योग साधनाओं में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि, बन्ध एवं मुद्रा, षट कर्म, युक्त आहार, युक्त कर्म, मंत्र जप आदि साधनाओं का अभ्यास नियमित करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

जो लोग योग सिद्धान्तों को समझ करके गुरु के बताये मार्ग के अनुसार शास्त्र विधि से योगाभ्यास करते हैं उनके परम कल्याण में कोई शंका नहीं रहती है। योग इतना व्यापक और महत्वशाली है कि सभी सिद्धान्त वादियों ने इसे अपनाया है।

योग साधना में यम नियमों की साधना को आवश्यक बताया गया है। यम प्रतिरोधक एवं नियम अनुपालनी है। आसन का अभ्यास शरीर एवं मन में स्थायित्व लाने में सक्षम है। शरीर को निरोग, हल्का, फुर्तीला, ओजस्वी तेजस्वी एवं वीर्य को शरीर में व्यापक बनाने के लिए योगासन बहुत उपयोगी है। योगासन जहाँ शरीर की आरोग्यता को बढ़ाते हैं वहीं वे प्राणायाम की साधना में भी सहायक होते हैं। अष्टांग योग में प्राणायाम से पहले आसन का निर्देश है।

प्राणायाम श्वास प्रश्वास प्रक्रिया का सुव्यवस्थित एवं नियमित अभ्यास है। श्वास को शरीर के अन्दर लेना पूरक कहा जाता है। श्वास को शरीर के अन्दर रोकने की अवस्था कुम्भक और श्वास को शरीर से बाहर छोड़ना रेचक कहा जाता है। आर्य ग्रन्थों में आचार्यों ने प्राणायाम की विविध विधियों का वर्णन किया है। प्राणायाम के अभ्यासी साधकों को चाहिए कि वे विधि विधान पूर्वक प्राणायाम का अभ्यास करें।

हठयोग के आचार्यो ने प्राणायाम के आठ विशेष भेद बताये हैं :–

सूर्य भेदन मुज्जायी सीत्कारी शीतली यथा।

भस्त्रिका भ्रामरी मूर्छा प्लाविनीत्यष्ट कुम्भकाः।।

सूर्य भेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और प्लाविनी ये आठ प्रकार के कुम्भक (प्राणायाम) कहे गये है। साधक को विधि पूर्वक इनका अभ्यास करना चाहिए। यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि अनुभवी गुरु की देख रेख में ही ये क्रियाएँ करनी चाहिए, केवल पुस्तकों में पढ़कर इन क्रियाओं को आरम्भ कर देने से हानि भी हो सकती है।

योगियों ने प्राणायाम को महान तप माना है। साधक–योगी युक्त आहार–विहार होकर अपनी प्राण वायु पर नियन्त्रण रखता है तो अजर अमर हो जाता है। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में स्पष्ट कहा है कि–

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्म सु

युक्त स्वप्नाव वोधस्य योगी भवति दुःखहा।।

नात्यश्न तस्तु योगोऽस्ति न चैकान्त मनश्नातः।

न चाति स्वप्न शीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।।

जिस व्यक्ति का आहार विहार युक्त है। हर चेष्टा संयमित है। जिसका सोना व जागना भी संयमित है उसकी योग साधना सभी प्रकार के दुःख द्वन्दों को दूर करने वाली होती है। युक्ताहार स्वस्थ्य जीवन के लिए पर्याप्त, सुव्यवस्थित एवं नियमित भोजन का समर्थन करता है।

जो मनुष्य बहुत अधिक खाता है या बिल्कुल नहीं खाता, बहुत अधिक सोता है या सोता ही नहीं ऐसा व्यक्ति योग साधना में सफलता नहीं पा सकता। इसलिए साधक का जीवन संयमित होना चाहिए। जो साधक अपनी प्रत्येक दिनचर्या पर नियन्त्रण कर लेता है यह योग साधना के मार्ग में सुखी बन जाता है।

षटकर्म शरीर एवं मन शोधन का सुव्यवस्थित एवं नियमित अभ्यास है जो शरीर में एकत्रित हुए (टाक्सीन गैस, इन्फैक्सन, आदि) विष को हटाने में सहायता प्रदान करता है।

प्राणायाम के अभ्यासी साधकों को त्रिबन्ध तीनोंबन्धों को लगाने की विधि का ज्ञान होना चाहिए। हठयोग प्रदीपिका ग्रन्थ के रचयिता योगी आत्माराम ने तीनों बन्धों– (मूल बन्ध, उडडीयान बन्ध और जलन्धर बन्ध) का उत्कृष्टता के साथ वर्णन किया है। जो साधक प्राणायाम करते समय तीनों बन्धों को विधि पूर्वक लगाते हैं उनको प्राणायाम सिद्ध हो जाता है।

प्रत्याहार के अभ्यास से व्यक्ति स्वयं की इन्द्रियों के माध्यम से सांसारिक विषय का त्याग कर अपने मन तथा चैतन्य केन्द्र के एकीकरण का प्रयास करता है। धारणा का अभ्यास मनोयोग के व्यापक आधार क्षेत्र के एकीकरण का प्रयास करता है। यह एकीकरण बाद में ध्यान में परिवर्तित हो जाता है। इसी ध्यान में चिन्तन एवं एकीकरण रहने पर कुछ समय पश्चात समाधि की अवस्था में परिवर्तित होता है।

ध्यान का अभ्यास योग साधना पद्यति का सबसे महत्वपूर्ण घटक माना गया है जो व्यक्ति को आत्मबोध एवं श्रेष्ठता की ओर ले जाता है। यह साधक को नकारात्मक भावनाओं से दूर रखता है। भय, क्रोध, अवसाद, चिन्ता दूर करता है और सकारात्मक भावनाएँ विकसित करने में सहायता करता है। मस्तिष्क को शान्त रखता है। एकाग्रता, स्मृति, विचारों की स्पष्टता और मनोबल को बढ़ाता है। पूरे शरीर और मस्तिष्क को पर्याप्त आराम देते हुए उनका कायाकल्प करता है।

साधक को नियमितता और निरन्तरता के साथ योग अभ्यास करना चाहिए। अपने गुरु मंत्र का अधिकाधिक जाप करें और इष्ट देव का ध्यान करें। ऐसा करने से साधक शीघ्र ही अनुभव करने लगेगा कि उसे पूर्ण सुख की प्राप्ति हो रही है।

योगी लोग शिव को अपने अन्तः करण में ही देखते हैं।

शिव धर्मोन्तर में आया है कि योगी लोग शिव को आत्मा में ही देखते हैं पढ़िये निम्न श्लोक–

शिवमात्मनि पश्यन्ति, प्रतिमासु न योगिनः
आत्मस्थं यः परित्यज्य, वहिस्थं भजेत शिवम्
हस्तस्थ पिण्डमुत्सुज्य, लिह्यात्कर्पूरात्मनः
सर्वत्रावस्थितं शान्तं न पश्यन्तीहं शंकरम्

अर्थात्

" योगिजन शिव का आत्मा में ही दर्शन करते हैं। प्रतिमाओं में नहीं। जो पुरुष आत्मा में स्थित शिव का परित्याग कर बाह्य शिव का पूजन करता है वह मानो हाथ का ग्रास गिरा कर केवल अपनी हथेली चाटता है। जिस प्रकार अन्धा आदमी उदय हुए सूर्य को नहीं देख सकता उसी प्रकार ज्ञान नेत्रों से रहित होने के कारण लोग सर्वत्र विद्यमान शान्तस्वरूप शिव का दर्शन नही कर पाते। जो पुरुष सर्वगत शान्तमूर्ति शिव का दर्शन करता है, उसके तो अन्तःकरण में ही शिव विराजमान हैं। किन्तु जो आत्मस्थ शिव को नहीं देख सकते वे ही उन्हें तीर्थस्थान में खोजते हैं। जो पुरुष आत्मस्थ तीर्थ को त्यागकर बाह्य तीर्थादि में जाता है। वह मानो अपने हाथ का महारत्न गिराकर कॉच ढूँढ़ता फिरता है।

प्राणायाम और उसकी उपयोगिता

श्री नारायण स्वामी

योगियों में प्राणायाम की बड़ी उपयोगिता है। योग दर्शन में बताया गया है कि प्राणायाम से प्रकाश पर जो तमादि का आवरण आ जाता है। वह क्षीण हो जाता है और प्रत्याहार आदि आगे के अङ्गों के सिद्ध करने की योग्यता भी आ जाती है। प्राणायाम से इनके सिवा शारीरिक और मानसिक उन्नति भी होती है। जिसका विवरण यहाँ दिया है :

प्राणायाम और शारीरिक उन्नति– प्राणायाम से शारीरिक उन्नति किस प्रकार होती है, इस बात को जानने के लिए एक दृष्टि शरीर के अन्दर होने वाले अनिच्छित कार्यों में से हृदय और फेफड़े के कार्यों पर डालनी चाहिए।

हृदय का स्थूल कार्य–समस्त शरीर से अति सूक्ष्म नलियाँ हृदय में आती हैं। और हृदय से समस्त शरीर में जाया करती हैं। पहली नलिया 'शिरा' और दूसरी 'धमनि' कहलाती है। शिराओ का काम यह है कि समस्त अशुद्ध रक्त शुद्ध होने के लिए हृदय में लाया करे। हृदय, उस रक्त को फेफड़े द्वारा शुद्ध करता है और शुद्ध रक्त को धमनियों के द्वारा समस्त शरीर को भेज दिया करता है। रक्त अशुद्ध क्यो होता है ? इसका कारण यह है कि समस्त शरीर व्यापार में उसका प्रयोग होता है शुद्ध रक्त में कुछ चमक लिए हुए मच्छी सुरखी होती है। परन्तु शरीर व्यापार में आने से वह अशुद्ध हो जाता है। और उसमें कुछ मैलापन आ जाता है। शुद्ध रक्त में यह काफी कम मात्रा में रहता है। काम में आने से यह मात्रा कम होकर उसकी जगह एक विषैली वायु रक्त में आ जाती है। और इस परिवर्तन से रक्त का रंग मैला, स्याही माइल हो जाता है। हृदय में जब अशुद्ध रक्त शिराओं के द्वारा पहुँचता है तो हृदय उसे फेफड़ों में भेजता है।

फेफड़े का काम– यहीं से शुरू होता है। फेफड़े स्पंज की भाँति असंख्य छोटे–छोटे घटकों का का समुदाय है। एक शरीर का वैज्ञानिक ने हिसाब लगाया है कि लम्बाई चौड़ाई में फैला देने से फेफड़ा 14000 वर्ग फीट जगह घेरेगा। ये घटक एक मॉसपेशी की चाल से खुलते और बन्द होते रहते है। जब ये घटक खुल जाते हैं। तब एक ओर से तो हृदय से अशुद्ध रक्त और दूसरी ओर से श्वास के द्वारा लिया हुआ शुद्ध वायु दोनों उन्हें भर देते हैं। प्रकृति का एक विलक्षण नियम उनमें काम करता है। इस नियम के वशीभूत होने से जिसमें जो वस्तु नहीं होती वह दूसरे से खींच लेता है। रक्त में तो शुद्ध वायु नहीं होता वह उसे श्वास के द्वारा आये हुए वायु से ले लेता है। और श्वास द्वारा लिये हुए वायु में कार्बन नहीं होता, वह उसे अशुद्ध रक्त से ले लेता है। इसका परिणाम यह होता है कि रक्त में से कार्बन वायु के निकल जाने और शुद्ध वायु के आ जाने से वह शुद्ध हो जाता है। इस प्रकार शुद्ध हुआ रक्त धमनियों के द्वारा शरीर में चला जाता है और अशुद्ध हुई वायु निःश्वास के द्वारा बाहर निकल जाती है। यह कार्य प्रतिक्षण हुआ करता है।

हृदय की धड़कन से रक्त को शुद्ध होने के लिए फेफड़े में एक बार जाना और फेफड़े से शुद्ध

होकर रक्त का फिर हृदय में वापिस आना, इन्हीं दो क्रियाओं से हृदय की धड़कन बनती है। औसतन एक मिनट में 72 ऐसी धड़कनें, एक प्रौढ़ पुरुष के हृदय में हुआ करती हैं। विशेष अवस्थाओं में आयु के न्यूनाधिक होने आदि कारणों से धड़कनों की संख्या भी न्यूनाधिक हो जाया करती है। 24 घण्टे में इस प्रकार एक शरीर शास्त्रज्ञ के हिसाब से 25 मन रक्त हृदय से शुद्ध होने के लिये आता है। और इतना ही शुद्ध होकर फेफड़े से हृदय में वापिस चला जाता है इस धड़कन की आवाज "लुप–डप" शब्दों के उच्चारण जैसी होती है।

फेफड़े में शुद्ध वायु न पहुँचनें का परिणाम –

अब विचारणीय बात यह है कि हृदय से रक्त शुद्ध होने के लिए फेफड़े में जावे परन्तु श्वास द्वारा पर्याप्त वायु फेफड़े में न पहुँचे या सब कोषों (घटकों) में जहाँ रक्त पहुँच चुका है। शुद्ध वायु न पहुँचे तो उसका परिणाम क्या होगा ?

फेफड़े में मुख्यता तीन भाग हैं (1). ऊपरी भाग जो प्रायः गर्दन तक है। (2). मध्य भाग जो दोनों ओर हृदय के इधर–उधर है। (3). निम्न भाग जो " डायफ्रम " के ऊपर दोनों ओर है। साधारण रीति से जो श्वास लिया जाता है वह पूर्ण श्वास नहीं होता इसलिए फेफड़े के सब भाग अथवा सब भागों के समस्त घटकों में नहीं पहुँचता तो ऊपरी भाग फेफड़े का रोगी होना शुरू हो जाता है। और अन्त में वह " ट्यूमरक्युलोसिस " जैसे रूप को ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार फेफड़ों के मध्य और निम्न भागों के रोगी हो जाने से खाँसी, श्वास, निमोनिया और जीर्ण–ज्वरादि अनेक रोग जो फेफडों से सम्बन्धित हैं होने लगते हैं। इस प्रकार पर्याप्त वायु फेफड़ों में न पहुँचने से जहाँ एक ओर फेफड़ों से सम्बन्धित रोग उत्पन्न हो जाते हैं और दूसरी ओर रक्त शुद्ध नहीं हो पाता और यह बिना शुद्ध हुए अशुद्ध रक्त ही हृदय में लौटकर वहाँ से समस्त शरीर में धमनियों के द्वारा फैल जाता है। बार–बार इस प्रकार दूषित रक्त के शरीर में फैलने से मामूली खाज से लेकर कुष्ट रोग तक हो जाया करते हैं।

इन सब दुष्परिणामों से बचने के लिए आवश्यक है कि प्राणायाम के द्वारा फेफड़ों के समस्त भागों में वायु बहुतायत से पहुँचा करें। जिससे उन्हें भी पुष्ट बनाया जाए और रक्त को भी उपर्युक्त दोषों से पृथक् रखा जा सके।

प्राणायाम से कारबोनिक एसिड के निकलने में कमी–

प्राणायाम के सम्बन्ध में एक विद्वान ने जिसका नाम वीरार्ट था अनेक परीक्षण किये और उन परीक्षणों का फल यह निकलता है कि जब मनुष्य निःश्वास रहा तो कारबोनिक एसिड गैस बहुत कम मात्रा में उसके शरीर से निकली जिसका फल स्वाभाविक रीति से यह हुआ कि वह भूख के कष्ट से मुक्त रहा। जप से भूख में कमी – प्राणायाम के साथ जप भी किया गया। जप चाहे प्राणायाम के साथ किया गया या बिना प्राणायाम के परन्तु वह मानसिक ओम् का जप, तो प्रत्येक दशा में यह फल निकला कि कारबोनिक गैस कम मात्रा में निकली उपवास के बाद जिस क्रिया से भूख कम से कम लगती है वह ओउम् का मानसिक जप है। यदि मनुष्य प्रतिदिन 12000 बार ओउम् का जप किया करे तो उसे बहुत थोड़े भोजन की जरूरत होती है। जप से कुम्भक की अवधि भी बढ़ती है। जिन शब्दों से कुम्भक की मात्रा बढ़ती है वह मूर्छत्पादक समझे जाते हैं। डॉक्टर रैकलिक का कहना है कि एक लड़का 450 बार

'कप' शब्द के उच्चारण करने से सो गया। जप की अवस्था में केवल औंस रोटी–दाल खाना भूख के निवारणार्थ पर्याप्त समझा गया है। अनेक बार परीक्षा करने से भी ऐसा ही प्रमाणित हुआ है।

एक उदाहरण– एक बच्चे का शीतोष्ण जिसके श्वास जल्द–जल्द चला करते हैं। 2025 (F) होता है। परन्तु एक बूढे आदमी का जिसके लिए कम भोजन की जरूरत हुआ करती है शीतोष्ण केवल 99.5 (F) होता है। एक चिड़िया जिसका टेम्प्रेचर 206 से 208 डिग्री तक होता है। केवल तीन दिन बिना भोजन के जिन्दा रह सकती है। परन्तु एक साँप जो चिड़िया की अपेक्षा थोड़ी गर्मी रखता है थोड़ा पुरुषार्थ करता है। और इसलिए थोड़ी कारबोनिक गैस निकालता है 3 मास और इससे भी अधिक बिना भोजन के रह सकता है। इसी प्रकार प्राणायाम का जितना अभ्यास होगा इतनी ही कम भूख लगेगी और आयु की वृद्धि भी होगी।

मेढक और प्राणायाम –

कुछ एक प्राणियों के नाम यह दिखलाने के लिए अंकित किये जाते हैं कि वे एक मिनिट में कितने श्वास लेते हैं आप यह जान सके।

संख्या	नाम प्राणी	कितने श्वास एक मिनिट में लेते हैं
1.	कबूतर	34
2.	मामूली चिड़िया	30
3.	बतख	21
4.	बन्दर	30
5.	मनुष्य	12
6.	सुअर	36
7.	कुत्ता	28
8.	बिल्ली	24
9.	बकरी	24
10.	घोड़ा	16
11.	मेढक	3

इस तालिका से यह प्रकट होता है कि मेढक सबसे कम श्वास लेता है। मेढक के लिए विद्वानों ने बतलाया है कि वह 220 वर्ष तक जीवित रहता है। नवम्बर के मध्य में यह जमीन के नीचे चला जाता है और फिर पाँच मास के बाद अप्रेल के मध्य में निकलता है। इस प्रकार यह पाँच मास तक बिना भोजन और बिना श्वास के यहाँ रहा करता है।

ध्यानाभ्यासी का ध्यान बन्द होने का मुख्य कारण

श्री प्रभुजी के आत्मांश, आदरणीय योगाभ्यासी एवं योग ध्यानी गुरु–भाई बहनों के लिए एक शिक्षाप्रद एवं प्रेरणादाक प्रसंग, इस नीयत को मनोगत करके लिखने का प्रयास किया जा रहा है कि ध्यान के प्रति सजग, सतर्क एवं सावधान रहने का प्रयत्न करें। कहीं ऐसा न हो कि ध्यान लगना बन्द न हो जाय। ध्यान के आनन्द की प्रत्यक्ष अनुभूति तो नहीं है परंतु श्री राम चरित मानस में कवि प्रवर सन्त तुलसीदास जी ने लिखा है कि महामुनि श्री सुतिक्षण जी महाराज, मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम के अनन्य उपासक थे एवं उनकी कृपा से उनका ध्यान भी अच्छा लगता था। वन गमन के समय भगवान श्रीराम जब श्री सुतीक्षण जी महाराज के आश्रम के करीब से गुजर रहे थे तो उनके मन में भाव आया कि ध्यानाभ्यासी श्री मुनि महाराज का आश्रम देखता चलूँ। वे अपनी प्रिया जगत जननी भगवती श्रीमती सीता एवं अनुज भ्राता श्री लक्ष्मण जी के साथ उनके आश्रम पहुँच गये। संयोगवशात् वह समय महात्मा श्री सुतीक्ष्ण जी के ध्यानाभ्यास का था एवं वह अपने वक्षस्थल में भगवान श्रीराम के दिव्य स्वरूप का दर्शन कर रहे थे। भगवान श्रीराम अपनी उपरोक्त जोड़ी के साथ उनके आश्रम पहुँचकर उन्हें उठने हेतु आवाज लगा रहे हैं एवं महामुनि भगवान श्रीराम की दिव्य झांकी के ध्यान में, इतने आनन्द विभोर हैं कि यह जानते हुए कि मैं जिस आध्यात्मिक सत्ता को ध्यान दृष्टि से देख रहा हूँ, वही आये हैं परंतु आनन्द की वह परमावस्था थी, जिसे वे अलहदा होने देना नहीं चाहते थे। महात्मा श्री तुलसीदास जी ने लिखा है:–

अति सय प्रीति देखि रघुबीरा, प्रगटे ह्रदय हरण भव भीरा।
तब रघुनाथ निकट चलि आए, देखि दश नि जन मन भाये।
मुनिहि राम बहुभाँति जगावा, जागन ध्यान जनि सुख भावा।।

अब मैं आपका ध्यान मुख्य विषय की तरफ परिवर्तित करते हुए, उस प्रसंग की बात करता हूँ जब श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश के वार्षिकोत्सव की समाप्ति के बाद, अपने–अपने घरों को जाने का कार्यक्रम आरम्भ हो गया था। आराध्यदेव श्री योग साधन आश्रम के दरबार के सामने आराम कुर्सी पर सहजावस्था में विराजमान थे। दाँहिनी तरफ प्रसाद का कनस्तर रखा हुआ था एवं आराध्यदेव के सामने फर्श पर गुरुभाई–बहन बैठे हुए थे। हमारे आदरणीय गुरुभाई–बहन अपने घरों को जाने की नियत से आते, आराध्यदेव को दक्षिणा देकर के प्रणाम करते एवं श्री त्रिलोकी नाथ से घर वापस जाने की प्रार्थना करते। अनाथनाथ उन्हें प्रसाद देकर विदा करते एवं हमारे आदरणीय भाई–बहन पुनः श्री चरणों में प्रणाम निवेदित कर अपने निवास स्थानों को प्रस्थान करते। उनके जाने के पन्द्रह–बीस मिनट तक वातावरण बिल्कुल शान्त रहता एवं तदनन्तर फिर यही क्रम फिर दुहराया जाता। उत्सव की व्यस्तता के कारण श्री सद्गुरुदेव भगवान का स्थूल शरीर भी काफी थक चुका था एवं वह बार–बार जम्हाई ले रहे थे। अपराह्न करीब साढ़े पाँच बजे का समय था। आराध्यदेव जी लघुशंका करने गये एवं आकर हाथ मुँह धोकर आये। हमारे परम आदरणीय गुरुभाई श्री पुष्कर दत्त जी द्वारा पानी पिलाये गये। उसके बाद आराध्यदेव जी ने हमको आपको शिक्षा देने हेतु हमारे परम आदरणय गुरुभाई श्री गुरुमुख दास थिरवानी जी को निमित्त बनाया एवं अपने मुखारविन्द से बोले, ''लल्ला थिरवानी! तेरा ध्यान लगता है।'' श्री थिरवानी जी ने हाथ जोड़े हुए विनीत भाव से प्रार्थना

किया, ''गुरुदेव! आपकी करूणा कृपा से हमारा ध्यान लगता है।'' श्री मुख ने कहा, ''लल्ला थिरवानी! जानते हो तुम्हारा ध्यान लगना कब बन्द हो जायेगा।'' श्री थिरवानी जी ने प्रणाम की मुद्रा में हाथ जोड़कर प्रार्थना किया, ''नहीं गुरुदेव! मैं नहीं जानता कि मेरा ध्यान लगना कब बन्द हो जायेगा।'' श्री मुख ने कहा, ''लल्ला थिरवानी! यदि तेरे मन में तुमसे दुर्व्यवहार या अपकार करने वालों के प्रति बदला लेने की बात आयी एवं तुमने बदला लिया या लेने का प्रयत्न किया तो उसी समय से तेरा ध्यान लगना बन्द हो जावेगा, समझे।'' श्री भाई थिरवानी जी ने हाथ जोड़कर कहा कि हाँ गुरुदेव मैं समझ गया। श्री मुख ने कहा, ''लल्ला थिरवानी! नहीं समझे हो तो तुम्हें दोबारा समझा दूँ।'' श्री थिरवानी जी ने प्रार्थना किया कि, ''गुरुदेव! समझ तो मैं गया, परंतु इस बदला लेने की भावना से बचाओगे तो आप ही।''

आराध्यदेव ने प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए कहा, ''लल्ला थिरवानी! योगाभ्यासी अपनी आध्यात्मिक शक्ति का मालिक होता है। अतः बचना तो तुम्हें है। हाँ, यह बात अलहदा है कि उस समय तुम श्री प्रभु जी को याद करोगे तो वे अपने बच्चों को सम्भाल ही करते हैं। यदि ऐसे प्रसंग उपस्थित होने पर स्वयं निर्णय ले लिया तो तू जाने तेरा काम जाने। उपरोक्त बातें, कालचक्र, युगचक्र एवं जगचक्र को एक साथ चलाने वाले जगदात्मा परमेश्वर एवं पूर्ण योगेश्वर श्री सद्गुरुदेव जी महाराज ने आदरणीय भाई श्री थिरवानी जी को निमित्त बनाकर, हम सभी गुरुभाई–बहनों को खूब अच्छी प्रकार चेतावनी युक्त वाणी द्वारा समझा दिया है। अतः मेरे आदरणीय गुरुभाई–बहनों तथा नवागन्तुक जिज्ञासुओं को साधना में सावधान एवं ध्यान से सजग रहने की निहायत जरूरत है।

आराध्यदेव द्वारा यह समझाने के मात्र दो महीने बाद बड़ा ही विकट समय उपस्थित हो गया। परम आदरणीय गुरुभाई श्री थिरवानी जी के साथ तीन कर्मचारी काम करते थे। उन्होंने श्री थिरवानी जी को परेशान करना आरम्भ किया। उन अत्याचारियों ने जो परम आदरणीय गुरुभाई श्री थिरवानी जी के कार्यालय क्षेत्र में ही कार्य कर रहे थे, इन्हें परेशान करना आरम्भ कर दिया। उन सबों ने कभी अकेले एवं कभी मिलकर इतना परेशान किया कि भाई का अच्छी प्रकार नौकरी करना दुरूह हो गया। अपने श्री सिद्धयोग दरबार के विभिन्न भाई–बहनों को यहाँ यह बताना समीचीन होगा कि हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री थिरवानी जी अपने विभाग के सत्यवादी, परीश्रमी एवं नेक कार्यकर्ता रहे हैं। यही कारण है कि अन्ठावन साल की सेवा निवृत्ति की आयु पूरी करने के बाद इन्हें थोड़ा–थोड़ा करके नौकरी में चार साल का इक्सटेंशन मिला। कहने का तात्पर्य यह है कि जब और लोग इनके विभाग में अन्ठावन साल की उम्र में सेवा मुक्त हुए तो परम आदरणीय भाई जी बासठ साल की उम्र में सेवा निवृत्त हुए। साथ ही यदि हकीकत बयान किया जाय तो अब भी नौकरी कर रहे हैं अर्थात् श्री प्रभु कृपाओं का खूब प्रचार एवं प्रसार कर रहे हैं। अन्तर है तो मात्र इतना कि पहले भाई जी सरकार की नौकरी करते थे एवं अब त्रिलोकी नाथ की नौकरी कर रहे हैं। पहले की नौकरी में लौकिक कार्य करते थे एवं अब पारलौकिक कार्य कर रहे हैं।

इनसे द्वेष भावना रखने वाले इनके तीनों कर्मचारी यद्यपि अपनी समझ से इन्हें परेशान करने की कोई विधा नहीं छोड़े परंतु परम आदरणीय गुरुभाई श्री थिरवानी जी चट्टान की तरह अविचलित बने रहे। कारण एक तो इनके उपरोक्त संदर्भित गुण एवं दूसरे श्री सद्गुरुदेव भगवान की अलौकिक सहायता। उन तीनों के सभी प्रयास निष्फल हो गये। एक आध्यात्मिक प्रसंग जिसमें श्री मेघनाद एवं शेषावतार श्री लक्ष्मण जी की लड़ाई का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि:–

नाना प्रकार की चतुराई, दशकन्धर तनय दिखाता था।
कौशल किशोर के कौशल से, आघात व्यर्थ हो जाता था।।

उन तीनों दुर्बुद्धि कर्मचारियों ने देखा कि थिरवानी किसी प्रकार हार मानने वाला नहीं है तो उन सबों ने इसके पूर्णतया सफाया (कत्ल) करने की योजना बनायी कि न रहेगी बांस न बजेगी बांसुरी। उन सबों की इस योजना की जानकारी भाई श्री थिरवानी जी को हो गयी। पहले तो इनके मन में भाव आया कि इनका जवाब इन्हीं की भाषा में दिया जाय परंतु उर प्रेरक श्री गुरुदेव भगवान की कृपा से गुरुदेव की चेतावनी याद आ गयी। उन्होंने आराध्यदेव को अपनी समझ से स्थिति पूरी तरह वर्णन करते हुए पत्र लिखा। श्री गुरुदेव का जवाबी कृपा पत्र इन्हें पाँच दिन के अन्दर ही मिल गया। उस पत्र में परिस्थितियों का वर्णन करते हुए भाई जी ने श्री गुरुदेव भगवान से प्रार्थना की थी कि इस स्थान पर हमें कार्य करते हुए बारह साल हो गये हैं। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं अपना स्थानानन्तर हरिद्वार करा लूं। अनाथनाथ ने कृपा पत्र में लिखा था, ''लल्ला! बैर करना ठीक नहीं है, अतः यदि स्थानानन्तरण हो जाय तो तुम स्थानान्तरण हरिद्वार करा लो।'' आदरणीय भाई जी ने प्रयत्न किया एवं श्री गुरुदेव भगवान की कृपा से उनका स्थानान्तरण हरिद्वार हो गया। आराध्यदेव ने कृपा पत्र में लिखा था कि लल्ला! तुम्हें अपने विरोधियों से लड़ाई नहीं करनी है, श्री प्रभु जी उन्हें उनकी करनी का फल अवश्य दे देंगे। अब इस कृपा प्रसंग को लिखते समय एक थोड़ा प्रसंग याद आ रहा है जिसमें हिन्दू महिलाओं को समझाते हुए यह लिखा गया है कि स्त्रियों को तन–मन–धन से अपने पूज्य पतिदेव का ही ख्याल रखना चाहिए एवं पति के अलावा और किसी भी वस्तु की कामना नहीं करनी चाहिए। लिखा गया है कि–

पतिव्रता पति को भजे, छोड़–छाड़ सब काज।
पतिव्रता नंगी रहे तो, उसके पुरुष को लाज।।

अर्थात् पतिव्रता स्त्री यदि किसी कारण से फटे–पुराने वस्त्र पहन रखी है, जिसमे उसके अंग दिखलाई दे रहे हैं तो इसमें उसकी कोई बेइज्जती नहीं है अर्थात कोई इस कार्य के लिए उसको दोषी नहीं ठहरायेगा। देखने वाले इसका दोष उसके पति को देंगे एवं उसका पति भी इस कमी को अपनी कमी सहर्ष स्वीकार करेगा एवं यथाशीघ्र उसके निराकरण का प्रयास करेगा।

ठीक पतिव्रता स्त्री की तरह, अपना कुछ भी न मानते हुए अर्थात् सब प्रभु का मानकर केवल श्री सद्गुरुदेव भगवान की प्रसन्नता के लिए उनकी आज्ञाओं का अक्षरशः पालन करने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि उनकी आज्ञाओं का पूरा–पूरा पालन हो गया तो उसकी बात ही निराली है। नहीं पूरा–पूरा हो पा रहा है तो भी गुरु आज्ञा पालन करने का प्रयत्न तो सदैव करते ही रहना चाहिए। ऐसी स्थिति में श्री गुरुदेव भगवान की कृपा से उस साधक के दुनियादारी वाले कार्य सहज ही सम्पादित होते रहते हैं। आराध्यदेव अपने मुखारविन्द से कई बार उद्घोष किये हैं कि तुम लोग (आप हम या हमारे सभी गुरुभाई–बहन) श्री प्रभु जी का नियम से आरती पूजा किया करो। प्रातः पाँच बजे से सात बजे तक गुरुमन्त्र का जप तथा सात बजे से आठ बजे तक ध्यान किया करो, किसी से वैर भाव मत रखो, यदि सम्भव हो तो अपने से वैर रखने वाले के प्रति प्रेम नहीं कर सकते तो बैर मत करो। यदि तुम ऐसा करने का प्रयास करोगे तो श्री प्रभु जी की कृपा होगी एवं तुम्हारे सब लौकिक एवं पारलौकिक कार्य बनते चले जायेंगे। यदि हम आप ऐसा करेंगे तो आराध्यदेव योगेश्वर द्वय के प्रति अनायास ही हमारे आपके मुख से ये वाक्य अवश्य ही निकल पड़ेंगे कि:–

गुरुवर से अब कुछ माँगू,
ऐसे हैं हालात नहीं।
इतना दिया है गुरुवर जी ने,
जितनी मेरी औकात नहीं।।

'विज्ञातारमरे केन विजानीयात'

—: स्वामी विवेकानन्द :—

विज्ञातारमरे केन विजानीयात – विज्ञाता को कैसे जानोगे? ज्ञाता को कोई जान नही सकता, क्योंकि यदि वह समझ में आने योग्य होता, तो वह कभी ज्ञाता न रह जाता और यदि तुम आइने में अपनी आँखों का विम्ब देखो, तो तुम उन्हें अपनी आँखें नहीं कह सकते, वे कुछ और ही हैं, वे विम्बमात्र हैं। अब बात यह है कि यदि यह आत्मा – यह अनन्त सर्वव्यापी पुरुष साक्षी मात्र हो, तो इससे क्या हुआ? यह हमारी तरह न चल फिर सकता है, न जीता है, न संसार का संभोग कर सकता है। यह बात लोगों की समझ में नहीं आती कि जो साक्षी स्वरूप है, वह किस तरह आनन्द का उपभोग कर सकता है। ''हे हिन्दुओ, तुम सब साक्षी स्वरूप हो, इस मत से तुम लोग निष्क्रिय और अकर्मण्य हो गये हो'' – यह बात लोग कहा करते हैं। उनकी इस बात का उत्तर यह है, 'जो साक्षी स्वरूप है, वही वास्तव में आनन्दोपभोग कर सकता है।' अगर कहीं कुश्ती लड़ी जाती है तो अधिक आनन्द किन्हें मिलता है? – जो कुश्ती लड़ रहे हैं उन्हें या जो दर्शक हैं उन्हे?

इस जीवन मे जितना ही तुम किसी विषय में साक्षी स्वरूप हो सकोगे उतना ही तुम्हें उससे अधिक आनन्द मिलता रहेगा। यथार्थ आनन्द यही है और इस युक्ति से तुम्हारे लिए अनन्त आनन्द की प्राप्ति तभी सम्भव है, जब तुम इस विश्व ब्रह्मांड के साक्षी स्वरूप हो सको। तभी मुक्त पुरुष हो सकोगे। जो साक्षी स्वरूप है, वही निष्काम भाव से स्वर्ग जाने की इच्छा न रख, निन्दा–स्तुति को समदृष्टि से देखता हुआ कार्य कर सकता है। जो साक्षी स्वरूप है, आनन्द वही पा सकता है, दूसरा नहीं। अद्वैतवाद के नैतिक भाग की विवेचना करते समय उसके दार्शनिक तथा नैतिक भाग के अन्तर्गत एक और विषय आ जाता है, वह मायावाद है। अद्वैतवाद के अन्तर्गत एक एक विषय के समझने में ही वर्षों लग जाते हैं और व्याख्या करने में महीनों लग जाते हैं, इसलिए इसका मैं उल्लेख मात्र ही करूँगा। इस मायावाद को समझना सभी युगों में बड़ा कठिन रहा है। मैं तुमसे संक्षेप में कहता हुँ, मायावाद वास्तव में कोई वाद या मत विशेष नहीं है, वह देश, काल और निमित्त की समष्टि मात्र है – और इस देश, काल, निमित्त को आगे नाम–रूप में परिणत किया गया है। मान लो समुद्र में एक तरंग है। समुद्र से समुद्र की तरंगों का भेद सिर्फ नाम और रूप में है, और इस नाम और रूप की तरंग से पृथक कोई सत्ता भी नहीं है, नाम और रूप दोनों तरंग के साथ ही हैं, तरंगें विलीन हो जा सकती हैं; और तरंग में जो नाम रूप है, वे भी चाहे चिर काल के लिए विलीन हो जायें, पर पानी पहले की तरह सम मात्रा में ही बना रहेगा। इस प्रकार यह माया ही तुममें और हममें, पशुओं में और मनुष्यों में, देवताओं और मनुष्यों में भेदभाव पैदा करती है। सच तो यह है कि यह माया ही है जिसने आत्मा को मानो लाखों प्राणियों में बाँध रखा है और उनकी परस्पर भिन्नता का बोध नाम और रूप से ही होता है। यदि उनका त्याग कर दिया जाय, नाम और रूप दूर कर दिये जायें, तो वह सदा के लिए अन्तर्हित हो जायेगी, तब तुम वास्तव में जो कुछ हो, वही रह जाओगे। यही माया है। और फिर यह कोई सिद्धान्त भी नहीं है, केवल तथ्यों का कथन मात्र है।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/15-17 SEPTEMBER 2016

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

☐☐☐☐☐☐

चित्त का त्याग वास्तविक त्याग है
चित्तत्यागं विदुः सर्वत्यागं त्यागविदांवर।
तस्मिन्सिद्धे महाबाहो सत्यं किं नानुभूयते।।
चित्ते त्यक्तेलयं याति द्वैतमैक्यं च सर्वतः।
शिष्यते परमं शान्तमच्छमेकमनामभम्।।
(योगवाशिष्ठ)

सर्व त्याग देने पर भी त्याग नहीं होता। चित्त–त्याग करना ही सर्व त्याग है। यह चित्त त्याग सिद्ध हो जाने पर सत्य अर्थात् आत्मतत्व अनुभूत होता है। कारण कि चित्त त्याग होते ही द्वित्व एकत्व आदि सर्व प्रकार का ज्ञान उपशम होता है, उस समय जो कुछ अवशेष रहता है वही परमात्मा है।

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा

PRINTPOINT, AGRA 9897566203